अगस्त, 2003

बूधन

सहयोग राशिः 15 रुपये

बूधन

वर्ष : 1 अंक : 2 अगस्त, 2003

संपादकीय व प्रबन्ध कार्यालय
महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान
बी-3, सी ई एल अपार्टमेंट्स
बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव
दिल्ली-110096
फोन : 22618064, 24922803
E-mail : rmrc @ bol.net.in

इस अंक में

गतिविधियाँ

सहयोग राशि

	व्यक्तिगत	संस्थागत
आजीवन	1000 रु. ☐	2000 रु. ☐
त्रैवार्षिक	100 रु. ☐	200 रु. ☐
द्विवार्षिक	70 रु. ☐	140 रु. ☐
वार्षिक	40 रु. ☐	80 रु. ☐

अन्याय का सिलसिला अब और नहीं

भारतीय संविधान इस बात का मौलिक अधिकार देता है कि राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म और जाति के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। संविधान प्रत्येक नागरिक को कानून के सामने बराबरी का अधिकार भी देता है। संविधान की धाराओं में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेषाधिकार भी हैं। पर संविधान की इन धाराओं के बावजूद जमीनी सच्चाई यह है कि समाज में ही नहीं अपितु प्रशासनिक स्तर पर भी ऐसे भेदभाव करना आम बात है। यह सिर्फ एक समाज अथवा एक जाति की कहानी नहीं है। यह तो सैकड़ों जातियों की समस्या है, जिसका बीज ब्रिटिश प्रशासन ने बोया था। ब्रिटिश सरकार ने 1871 में 'अपराधी जनजाति अधिनियम' जारी कर देश की अनेक जातियों व जनजातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया। कालान्तर में इस सूची में वृद्धि होती गई और 1935 तक आते-आते लगभग 200 जनजातियों को अपराधी जनजाति घोषित किया जा चुका था।

आजादी के पाँच साल बाद इन जनजातियों को विमुक्त घोषित किया गया। परन्तु उनकी यह आजादी क्षणिक साबित हुई। जल्द ही 'अभ्यासिक अपराधी अधिनियम' लागू कर उन्हें पुनः पूर्व स्थिति में पहुँचा दिया गया। सच तो यह है कि आजादी के 55 वर्ष बीत जाने के बाद आज भी इन जनजातियों के लोगों को अपराधी समझा जाता है। समझा ही नहीं जाता अपितु समाज और प्रशासन के स्तर पर उसके साथ अमानवीय व्यवहार भी किया जाता है। जब कहीं चोरी अथवा अन्य आपराधिक घटनाएँ होती हैं तो जाति के आधार पर इन जनजातीय लोगों–जैसे सांसी, पारधी या बावरिया–का नाम उछाला जाता है। अपराधी किस्म के लोग तो हर जाति में पाए जाते हैं। ये अपना गिरोह भी बनाते हैं और शायद उनकी पूर्व नियोजित योजनाएँ भी होती होंगी। परन्तु अखबारों में अथवा प्रशासन द्वारा इन्हें इनके नामों से ही चिह्नित किया जाता है, जाति के आधार पर नहीं। दाउद व छोटा शकील जैसे माफिया डॉनों को भी उनके नाम से ही चिह्नित किया जाता है न कि जाति अथवा धर्म के आधार पर। परन्तु जब बात ब्रिटिश सरकार द्वारा कलंकित इन जातियों की आती है तो बिना किसी हिचक इन्हें इनकी जाति से संबोधित, चिह्नित और कलंकित किया जाता है: जैसे कि इस जाति के सारे लोग ही चोर अथवा अपराधी हों। इन जातियों के विषय में सोचते समय मानों हम अपनी समस्त सूझबूझ, सहिष्णुता और आत्मविवेक अपने पूर्वाग्रहों के सामने छोड़ बैठते हैं। इस बात का कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है कि वंशानुक्रम में चोर अथवा अपराधी का बेटा चोर अथवा अपराधी होगा। पर इसे हम सहज ही तथ्य के रूप में मान बैठे हैं और इन जातियों के लोगों के साथ उसी तरह का व्यवहार भी करते हैं। अब पारधी और बावरिया का ही मसला ले लें। ये जातियाँ अपने जीवनयापन के लिए शिकार करती थीं और इनमें से कुछ वन्य उत्पादों पर भी निर्भर रहती थीं। लेकिन बेतहाशा बढ़ती आबादी के कारण जंगलों और जीव-जन्तुओं दोनों में भारी कमी आई। इस प्रक्रिया को निहित स्वार्थों ने अपने प्रभाव का उपयोग कर काफी तेज भी बना दिया। भारत सरकार द्वारा 'वन्य संरक्षण' एवं 'वन्य-जीव संरक्षण अधिनियम' लागू करने के बाद इन जाति-समूहों के लोग दो जून के भोजन के लिए भी मोहताज हो गए। आर्थिक पायदान पर, शिकार करके जीवन यापन करने वाले ये लोग अपनी जीविका के लिए दर-दर भटकने लगे। राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर इनमें जीविकोपार्जन की उनमें कोई दूसरी क्षमता पैदा करने का प्रयास भी नहीं किया गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा कलंकित, अपने ही लोगों द्वारा बहिष्कृत समाज के हाशिए के ये लोग भला अपना जीवन कैसे जीएँ।

प्रायः हर समाज के अपने कुछ पूर्वाग्रह होते हैं पर किसी भी समाज के पूर्वाग्रह की सजा इतने व्यापक स्तर पर इतने सारे लोगों को (लगभग छः करोड़) इतने वर्षों तक भोगनी पड़े इसकी मिसाल शायद ही दुनिया में कहीं

और मिले। छुआछूत जैसी क्रूर व्यवस्था से तो हम आज तक उबर नहीं पाए, अब जाति और धर्म के आधार पर देश को टुकड़े-टुकड़े करने की यह सोच हमें कभी भी उन्नत राष्ट्र नहीं बनने देगी। जब तक समाज के 15-20 प्रतिशत लोग, बहुमत को दलित, स्त्री, अछूत, आदिवासी, घुमन्तू अथवा तथाकथित अपराधी जनजाति कहकर समाज के हाशिए पर डालने में सफल होते रहेंगे, भारत वर्ष अपनी तमाम प्राकृतिक सम्पदाओं एवं प्राचीनतम संस्कृति के बावजूद तीसरे दर्जे का राष्ट्र बना रहेगा। विश्व और भारत के भी समस्त वैज्ञानिक और तकनीकी विकास हमारे समाज को उन्नत नहीं बना सकते जब तक कि हम अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते।

हमारे समाज के विभिन्न वर्गों, धर्मों, जातियों-जनजातियों और उनके सामाजिक, आथिक, सांस्कृतिक जीवन के तमाम पहलुओं से जुड़ी हुई इन्हीं समस्याओं पर कुछ विशेष आलेख बूधन के इस अंक में सम्मिलित किए गए हैं। इन जनजातियों के बीच हो रही गतिविधियों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि ये जातियाँ-जनजातियाँ अब उठ खड़ी हुई हैं। उनके साथ अन्याय का सिलसिला अब और नहीं चलेगा। उन्होंने अपने संगठन भी बना लिया हैं जोकि एक बहुत ही सकारात्मक पहलू है। बंगाल के खेड़िया सबर के लोगों ने अपने संगठन बनाकर अपने ऊपर हो रहे जुल्मों का काफी हद तक प्रतिकार किया है। इसका नतीजा है कि उनके ऊपर ढाए जा रहे जुल्मों में बहुत कमी आई है। लोधा लोगों ने भी अपना संगठन बना लिया है। बिरसा मुंडा ने तो बहुत पहले ही मुंडा जनजाति के लोगों को एकत्रित कर व्यापक आन्दोलन किया था।

विगत दिनों गुजरात के तेजगढ़, पंचमहाल क्षेत्र के आदिवासियों ने अपने आदिवासी भाइयों के साथ 'दांड़ी यात्रा' की। बंजारा लोगों के राष्ट्रीय संगठन 'ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ' ने अपने कार्यकर्त्ताओं के लिए विगत 7-8 जून को मुम्बई में एक राष्ट्रीय शिविर का आयोजन किया जिसमें देश भर से तीन सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके महत्व को समझते हुए महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने स्वयं इसका उद्घाटन किया। अब दलितों के साथ आदिवासियों में भी उभार है। दलित आदिवासी एकता निश्चित ही इन लोगों की समस्याओं का उचित समाधान करेगी, ऐसी उम्मीद है।

इस अंक में मुस्लिम समाज में जाति की स्थिति पर एक खोजपरक लेख सम्मिलित किया गया है। भारतवर्ष में बौद्ध धर्म, दर्शन और संस्कृति के व्यापक प्रभाव के मद्देनजर 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं बौद्ध संस्कृति' विषय पर राहुल जी के जन्मदिन 9 अप्रैल के अवसर पर डॉ. तुलसीराम द्वारा दिया गया स्मारक व्याख्यान इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। न्यायमूर्ति श्री एम.एन. वेंकटचलैया भारत के मुख्य न्यायाधीश, मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष तथा संविधान संशोधन के कार्यान्वियन की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष ही नहीं रहे अपितु जनजातियों एवं विमुक्त एवं घुमन्तू जनजातियों की समस्याओं को देखा, जाना और उनका गहन अध्ययन किया। इन जनजातियों के विकास के लिए उन्होंने समाजशास्त्रियों, शिक्षाशास्त्रियों एवं आदिम जनजातियों के विषय के विद्वानों की अध्यक्षता में एक समिति का गठन भी किया। मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष पद पर रहते हुए उन्होंने महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए। इसी कड़ी में श्री वेंकटचलैया ने वर्ष 2001 में 'जनजातियाँ: वर्तमान और भविष्य' विषय पर बड़ोदरा में 'वेरियर एल्विन स्मारक व्याख्यान' दिया था। इस व्याख्यान के महत्व को देखते हुए इसका हिन्दी रूपान्तरण अपने पाठकों के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं।

आदिवासियों के महानायक वीर बिरसा मुंडा की मृत्यु 9 जून सन् 1900ई. को कारावास में हुई थी। 9 जून को बिरसा मुंडा की पुण्य-तिथि थी। उनकी याद में एक लेख उनके अन्तिम दिनों को लेकर डॉ. कुमार सुरेश सिंह की पुस्तक 'बिरसा मुंडा और उनका आन्दोलन' से साभार दे रहे हैं। बिरसा मुंडा अपने लोगों के बीच आज भी जीवित हैं। उनकी याद में अनेकों गीत गाए जाते हैं। इसी पुस्तक से दो मुंडा गीत भी दे रहे हैं।

अनिल कुमार पाण्डेय

आपका पत्र मिला

अक्टूबर, 2002 का अंक पढ़ने को मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई कि आप भी घुमक्कड़ जातियों के उत्थान के लिये प्रयासरत हैं। इसके लिये 'गूँज-ए-बंजारा' की ओर से साधुवाद स्वीकार करें। साथ ही अनुरोध है कि आपके द्वारा प्रकाशित 'बूधन' का 'बंजारा विशेषांक' की प्रति भेजने का कष्ट करे, मैं उसे वी पी द्वारा छुड़वा लूँगा। साथ ही समय-समय पर बंजारा समाज पर प्रकाशित अन्य प्रति भी भेजने का कष्ट करें।

रामनायक
'गूँज-ए-बंजारा', धार, म.प्र.

आपके यहाँ से प्रकाशित 'बूधन' का विज्ञापन 'इंडिया टुडे' के एक पुराने अंक में पढ़ा। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप विमुक्त, घुमंतू और अन्य जनजातियों पर केंद्रित पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। पत्रिका के उद्देश्यों की पूर्ति एवं सफलता हेतु मेरी अनन्त हार्दिक मंगलकामनाएँ सदैव आपके साथ रहेंगी।

मैं भी बुन्देलखण्ड में पाई जाने वाली आदिवासी सहरिया जनजाति के जनजीवन, कला, संस्कृति आदि विषयों पर लेखन एवं फोटोग्राफी आदि कर रहा हूँ। यदि आप इन्हें अपनी पत्रिका में प्रकाशित करना चाहेंगे, तो भेज दूँगा।

क्या पत्रिका की एक अवलोकनार्थ प्रति एवं वार्षिक ग्राहक बनने की प्रक्रिया से अवगत कराने की कृपा करेंगे, ताकि पत्रिका के अनुरूप सामग्री एवं चित्र आदि आपको भेज सकूँ तथा पत्रिका की सदस्यता भी ग्रहण कर सकूँ।

सुधाकर तिवारी
ललितपुर, उ.प्र.

'बूधन' के माध्यम से दलितों, शोषितों के जीवन, भाषा, संस्कृति को बचाने के लिए छेड़ी गई सार्थक लड़ाई अपने अभीष्ट तक पहुँचेगी। बूधन के प्रत्येक अंक जनजातीय जीवन को गहराई से समझने-जानने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। ग्लोबलाइजेशन के इस युग में विश्व ग्लोबल विलेज तो बनता जा रहा है पर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना मरती जा रही है। इसे बचाने की ज़रूरत है। आपका प्रयास इस भावना को बचाने का है। शुभकामनाएँ।

वल्लभ डोंगरे
भोपाल, म.प्र.

'बूधन' की सदस्यता के लिए वार्षिक शुल्क 60 रुपये अलग से एम.ओ. भेज रहा हूँ। अलग से ही 'बूधन' के अप्रैल 2003 अंक के विषय में भी शीघ्र लिखूँगा- फिलहाल इतना ही कि यह अंक विशेष रूप से बहुत अधिक ज्ञानवर्धक, ज़ानकारीपूर्ण व संग्रहणीय बना है। सम्पादक की कुशलता की छाप स्पष्ट है।

मैं महापण्डित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान के कार्यक्रमों व इसके अभियान में सक्रिय रूप से जुड़ना चाहता हूँ। कृपया संभाव्यता से अवगत कराएँ- मैं अपना परिचयात्मक विवरण भेज दूँगा। कृपया सूचित करें कि क्या राहुल सांकृत्यायन का साहित्य आपके पास पाठकों को उचित दामों में उपलब्ध कराने की व्यवस्था है- यह प्रतिष्ठान के घोषित उद्देश्यों में से अन्तिम है। मैं उनके साहित्य में से कुछ कृतियाँ देखना व खरीदना चाहता हूँ। साथ ही क्या बाबा साहेब अम्बेडकर का साहित्य भी इसी प्रकार उपलब्ध है। कृपया आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराएँ- आभारी रहूँगा।

शुक्ल चन्दर जैन
तिलक नगर, नई दिल्ली

'बूधन' का अक्टूबर-2002, वर्ष 2, अंक 2 और अप्रैल, 03 का अंक मिला। यह एक जरूरी पत्रिका है। मैंने घुमन्तू जातियों पर दो थीसिस तैयार किए हैं। एक तो गाड़ी लोहार जाति और दूसरी सपेरा जोगी जाति—जो एम.फिल व ग्रामीण विकास डिप्लोमा के लिए थी। इसी दौरान मैं दोनों जातियों के बीच कई-कई दिन रही। जो थीसिस के अतिरिक्त था। मैं कोशिश करती हूँ कि इसे हिन्दी में करके भेज सकूँ। चूँकि मेरी मातृभाषा पंजाबी है और इसी

भाषा में यह थीसिस भी थी अतः मैं कमजोर हिन्दी में ही भेज पाऊँगी। मुझे इन दोनों के अलावा सभी अंक 1 से 5 तक भिजवा देना। जून अंक से आगे के लिए 60 रुपये शुल्क भेज रही हूँ।

जसमेलकौर
सिरसा, हरियाणा

शायद आपकी जानकारी में हो कि मैं दिल्ली से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'कथादेश' में पत्रिकाओं पर एक स्तंभ लिखता हूँ। पहले एक बार 'बूधन' का भी जिक्र किया है।

चूँकि मैं सामाजिक शोध से जुड़ा हूँ, अभी सी.एस. डी.एस. दिल्ली के लिए स्वतंत्र फैलोशिप पर एक अध्ययन कर रहा हूँ। इसलिए आपके संस्थान की गतिविधियों के बारे में भी सहज उत्सुकता है। शुभकामनाओं सहित।

राजाराम भादू
जयपुर, राजस्थान

मुनस्यारी निवासी डॉ. शेर सिंह पांगती ने आपका परिचय तथा पता मुझे दिया है। मैं भी आदिवासी क्षेत्र मुनस्यारी (जनपद पिथौरागढ़-उत्तरांचल) का निवासी हूँ। मुझे आदिवासियों के सम्बन्ध में जानकारी के लिए प्रकाशित साहित्य से लगाव है। पता चला है कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान द्वारा 'बूधन' पत्रिका का प्रकाशन होता है।

साप्ताहिक 'आउट लुक' के 19-2-2002 में प्रकाशित एक लेख के अनुसार महाश्वेता देवी जी द्वारा सम्पादित बोर्तिका जर्नल भी प्रकाशित होता है।

कृपया मुझे इन दोनों पत्रिकाओं के लिए निर्धारित वार्षिक शुल्क सूचित कर दीजिएगा। यदि संभव हो तो इनकी एक-एक प्रति नमूने के तौर पर मुझे उपरोक्त पते पर भेज दीजिएगा। और भी प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित साहित्य के बारे में सूचना भेज सकें तो आभारी रहूँगा।

लक्ष्मण सिंह पाँगती
विकासनगर, लखनऊ

एक विशेष पत्र

'बूधन' का अप्रैल का अंक प्राप्त हुआ। पढ़कर खुशी हुई। मैं संजय घमंडे (छारा-भांतू) अहमदाबाद, छारानगर से हूँ। आशा है आपको याद आया होगा, जब आप यहाँ पधारे थे तब हमने आपको छारानगर का दौरा कराया था। प्रथम तो मैं 'बूधन' टीम और श्री सूरज देव बसन्त को धन्यवाद देना चाहूँगा कि आपके प्रयत्नों से दिल्ली की सांसी बस्ती में पूरा एक दिन उन्होंने बिताया और उन लोगों को समझने की कोशिश की तथा वहाँ के युवकों की व्यथा को समझा।

हमारा आपसे एक अनुरोध है कि यदि कोई यहाँ छारानगर में आकर भी यहाँ के लोगों को जानने की कोशिश करे तो हमें बहुत अच्छा लगेगा।

श्री ग्राटन पक्सन द्वारा लिखित 'बंजारा और रोमा संस्कृति' के बारे में जान कर खुशी हुई। उन्होंने बुल्गारिया, मैसेडोनिया और ग्रीस में स्थायी निवास करने वाले 'झामवासा' जाति की शादी के कुछ रीति-रिवाज की जो बात की, वह हमारी जाति से बहुत मिलती है जैसे कि :-

* 'झामबासा' जाति में प्रथम सुहागरात को वधू के कौमार्य की परीक्षा ली जाती है।

* हमारी 'भांतू' (जिसमें छारा, सांसी, आरोडिया, कंजर भाट, वगैरह का समावेश होता है) जाति में भी प्रथम सुहागरात को वधू की कौमार्य परीक्षा की जाती है और दूसरे दिन वधू के परीक्षा में सफल होने की खुशी मनाई जाती है।

* दूसरा, श्री ग्राटन ने लिखा कि विवाह की मुख्य रस्म जिसमें वर के पिता द्वारा वधू के पिता को निश्चित धनराशि और वधू के निकटतम रिश्तेदारों को उपहार देना।

* अभी हमारी जाति में भी वधू के पिता को वर के पिता द्वारा अमुक (कुछ) निश्चित धनराशि दी जाती है जोकि सिक्कों के रूप में दी जाती है। यह रकम पूरे समाज के सामने दी जाती है। ये सिक्के एक पत्थर पर गिराये जाते हैं, तथा वर द्वारा वधू की करीबी महिला रिश्तेदार (जैसे कि माँ, चाची वगैरह) को उपहार दिए जाते हैं। हमारे यहाँ दहेज प्रथा नहीं है। वधू को उनके माता-पिता व रिश्तेदार

अपनी खुशी से उपहार देते हैं।

अनिल जी, उन्होंने जो शब्दावली दी है उनमें से भी अमुक शब्द हमारे से मिलते हैं। अनिल जी बीच में मैंने एक वेवसाईड www.Romani.org का अध्ययन किया था तथा उसमें दिये गये E-mail / Address पर संपर्क करने की कोशिश की थी पर वह नाकाम रही। आपसे अनुरोध है कि यदि कोई संपर्क आपका हो तो कृपया हमें जरूर दीजियेगा। 'अन्तर्राष्ट्रीय रोमानी यूनियन' की छठी विश्व रोमानी कांग्रेस जोकि 2004 में लंदन में होने जा रही है, वहाँ के लोगों को हमारे बारे में जानकारी मिले, ऐसा कोई रास्ता हमें बताना।

मैं आजकल यहाँ के 'संदेश' अखबार में काम कर रहा हूँ। आपसे लगातार संपर्क में रहने की कोशिश करुँगा।

संजय घमंडे (पत्रकार)

अहमदाबाद, गुजरात

'बूधन' के अंक प्राप्त हुए। आपके प्रयास स्तुत्य हैं। अपने जीवट व्यक्तित्व के कारण ही आप बहुआयामी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर पा रहे हैं। आपसे मिलने की इच्छा बनी हुई है। 'इंदिरा सागर परियोजना' का अवलोकन करने के लिए आप पुनः सपरिवार सादर आमंत्रित हैं।

'बूधन' के रूप में उत्कृष्ट एवं तथ्यपरख साहित्य का सृजन हिन्दी में हो रहा है, वहीं अंग्रेजी में बिल, आपके हस्ताक्षर एवं लिफाफे पर मेरा पता विसंगति प्रस्तुत करता है।

इसके अलावा आपके महान कार्यों में काम आ सका तो अपना सौभाग्य समझूँगा। हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।

शंभू रतन अवस्थी

खण्डवा, म.प्र.

जनजातियाँ : वर्तमान और भविष्य

■ एम. एन. वेंकटचलैया

मैं 'भाषा' संस्थान के 'वेरियर एल्विन स्मारक व्याख्यान' के आमंत्रण से हृदय से गौरवान्वित महसूस करता हूँ और यह अवसर प्रदान करने के लिए विशेष तौर पर प्रो. (डॉ.) जी.एन.देवी के प्रति आभारी हूँ। वेरियर एल्विन का जीवन और कार्य भारत की जनजातियों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। एल्विन का हमारे वर्तमान समाज को, जनजातीय लोगों की अमिश्रित, सादगी भरी निश्कपट सभ्यता से, सभ्य बनाने का उच्च और सुदूरगामी स्वप्न था। जनजातीय समाज की समाज के प्रति आस्था एवं सहभागिता, उनका आर्थिक व्यक्तिवाद से मुक्त होना एवं किसी तरह की संग्रहण भावना न रखना एल्विन के लिए पाश्चात्य व्यक्तिवाद से सुखद अन्तर था। एल्विन का व्यक्तित्व बहुआयामी था: एक विद्वान और लेखक, साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता, पद्मभूषण, गाँधीवादी और ब्रिटिश साम्राज्य के घटिया शासन से खिन्न एक अंग्रेज।

ब्रिटिश राज एल्विन को शंका और नाराजगी से देखता था और इसी कारण जब वे एक बार थोड़े दिनों के लिए इंग्लैंड गए तो उनकी वापसी का पासपोर्ट देने से इंकार किया। लम्बी बातचीत व इस समझौते के अन्तर्गत कि एल्विन भारत में आकर किसी राजनैतिक गतिविधि में भाग नहीं लेंगे और अपने आपको जनजातियों की सेवा में ही सीमित रखेंगे, उन्हें आने की स्वीकृति प्रदान की गई।

निकोस कजान्त्जाकिस (Nikos Kazantzakis) ने सेंट फ्रांसिस के प्रति बहुत ही सुन्दर शब्द कहे:

इस कथा को, जो सच से भी अधिक सही है, लिखते समय मैं नायक और महान शहीद फ्रांसिस के प्रति प्रेम, श्रद्धा और प्रशंसा की भावना से ओत-प्रोत हो गया था। अक्सर ही आँसुओं की बड़ी बूँदें पांडुलिपि को खराब कर देती; अक्सर एक हाथ मेरे सामने हवा में घूमता, एक अनन्तकाल से हरे घाव वाला हाथ; ऐसा महसूस होता कि किसी ने उसमें कील घुसा दी हो या कील घूसाता ही जा रहा है। लिखते समय मुझे मेरे चारों तरफ धर्मगुरु के होने का अहसास होता रहता क्योंकि मेरे लिए धर्मगुरु फ्रांसिस कर्तव्यनिष्ठ मानव के उदाहरण हैं; ऐसा व्यक्ति जिसने अपने अथक संघर्षों के बल पर हमारी आशाओं तथा सदाचार, सत्य एवं सौन्दर्य से भी अधिक उच्च, और उस भगवान प्रदत्त पदार्थ को चेतना में परिवर्तित करने में सफल हुआ।

एल्विन के विषय में लिखना अपने आप को ऊँचा उठाने वाला अनुभव हो सकता है। एक नौजवान व्यक्ति, जो कि प्रसिद्धि और सौभाग्य से अपरिचित नहीं था; इंग्लैंड के एक ऐसे परिवार में पैदा हुआ जिसकी चार सौ साल की ईसाई धार्मिकता की परम्परा थी, जो ईसा मसीह के धर्म और उपदेशों के प्रचार-प्रसार हेतु भारत आया, पर गाँधीवादी विचारधारा के साथ बह गया और अन्ततः भारतीय जनजातीय लोकाचार से अपने आपको पूर्णतः समेकित कर लिया। ऐल्विन मानवीय सीमाओं के अन्तर्गत

रहकर बनाए जानेवाले किसी भी कलम-चित्रण से बहुत बड़े हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि एल्विन की तेजस्वी बुद्धि और अनथक आत्मा का रुढ़िवादी चर्चों से विलगाव हुआ। क्योंकि उनकी मानवता की सोच इतनी ऊँची थी कि वह किसी धर्म के बनाए गए ढाँचागत अनुशासन से नियंत्रित नहीं की जा सकती थी। एक तरह से गाँधी और जमुनालाल बजाज ने भारतीय जनजातीय समाज के लिए एल्विन के मानस पटल का द्वार खोला। एल्विन अपने सहयोगी शामराव हिवाले के साथ गोंड जनजाति की मुख्यभूमि में रहने व उनका एक हिस्सा बनने चले गए।

उनकी गहरी भारतीय संवेदना और जनजातियों के प्रति गहरी दिलचस्पी ने उन्हें तत्कालीन ब्रिटिश शासकों से विमुख कर दिया। ब्रिटिश शासक सोचते थे:

एक धर्म प्रचारक के रूप में एल्विन अत्यंत मेधावी हैं, लेकिन भारत के दोस्त के रूप में अत्यंत प्रबल विश्वासी व भावुक होने के कारण एक अत्यंत खतरनाक व्यक्ति हैं।

एल्विन को भारत में ब्रिटिश सत्ता के अमानुषिक व्यवहार से मानसिक आघात पहुँचा था। एक बार उन्होंने लिखा:

कोई भी व्यक्ति जिसने लाठी चार्ज होते हुए देखा हो, विशेषतया: निर्दोषों पर हवा में घूमती हुई विशालकाय लाठियाँ और लोगों के सिर और कंधे पर उनकी चोटों से उठती हुई आवाजें और मारनेवाले लोगों का घमंड और पीड़ितों की ईसा मसीह की तरह का अद्‌भुत धैर्य तो वह इसे कभी भूल नहीं सकता।

ब्रिटिश राज एल्विन को शंका और नाराजगी से देखता था और इसी कारण जब वे एक बार थोड़े दिनों के लिए इंग्लैंड गए तो उनकी वापसी का पासपोर्ट देने से इंकार किया। लम्बी बातचीत व इस समझौते के अन्तर्गत कि एल्विन भारत में आकर किसी राजनैतिक गतिविधि में भाग नहीं लेंगे और अपने आपको जनजातियों की सेवा में ही सीमित रखेंगे, उन्हें आने की स्वीकृति प्रदान की गई। ब्रिटिश सरकार लगातार उनकी गति-विधियों पर निगाह रखती थी। परन्तु एल्विन का जनजातियों की सेवाभाव से ओत-प्रोत अतिविशिष्ट जीवन आज कथा बन चुका है। बाद के दिनों में जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें जनजातीय मामलों का सलाहकार बनाकर नेफा भेजा। एल्विन के जनजातीय जीवन के साथ जुड़ाव और विमोहन ने इस विशिष्ट व्यक्तित्व की आधुनिक भारतीय इतिहास पर अमिट छाप छोड़ी है।

☆ ☆ ☆

आइए अब हम एल्विन के अत्यन्त प्रिय भारतीय जनजातीय समाज की एक झलक देखें।

40 वर्ष पूर्व 'ढेबर आयोग' ने टॉयनबी (Toynbee) के निम्नलिखित शब्दों को याद किया था:

आदिम समाजों की तुलना, जिन्हें कि हम अपने सीधे अवलोकन से जानते हैं, ऐसे लोगों से की जा सकती है जो कि पहाड़ के कगार पर सुषुप्ता अवस्था (निष्क्रिय रूप) में पड़े हुए हैं, जिसके नीचे और ऊपर खड़ी चट्टानें हैं; सभ्यता को नींद से जगे हुए इन लोगों के दोस्त के रूप में देखा जा सकता है जो अभी-अभी अपने पाँव पर खड़े हो खड़ी चट्टान पर चढ़ना प्रारम्भ किए हैं। प्रथम दृष्टि में; हम चढ़नेवालों को एथलिट तथा सुषुप्त लोगों को निश्चेष्ट वर्ग समूहों में विभाजित करने की ओर प्रवृत हो सकते हैं; परन्तु पुनर्विचार कर हम पाएँगे कि इस विषय पर फैसला स्थगित रखना ही समझदारी होगी।

ब्रिटिश शासन के दौरान सबसे ज्यादा शोषण जनजातियों का हुआ। आजादी के बाद संविधान ने उनके जीवन स्तर में सुधार की बड़ी आशाएँ पैदा कीं। संविधान की धारा 46 के अनुसार राज्य कमजोर वर्ग के लोगों, विशेषतया: अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को विशेष सावधानी बरतते हुए बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और हर तरह के शोषण से उनकी रक्षा करेगा। संविधान की धारा 275, 330, 332, 335, 378 में अनुसूचित जनजातियों और दबे हुए वर्गों के विकास हेतु विशेष योजनाओं का प्रावधान है।

संविधान की धारा 342 राष्ट्रपति को, जनजातियों अथवा जनजातीय समुदायों को संविधान के अनुरूप अनुसूचित जनजाति चिह्नित करने का अधिकार देती है। धारा 366(25), अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित करती है कि वह जनजातियाँ और जनजातीय समूह जोकि धारा 342 के अनुरूप हों। यही कारण है कि 'ढेबर आयोग' ने लिखा:

शब्द 'जनजातीय' संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है और वस्तुत: इसकी कोई संतोषजनक परिभाषा अन्यत्र भी नहीं है। आम आदमी के लिए इस शब्द का तात्पर्य होता है– पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले सीधे-साधे लोग; थोड़ी बहुत जानकारी वाले लोगों के लिए नाच और गाने के लिए प्रसिद्ध रंग-बिरंगे लोग; एक प्रशासनिक अधिकारी के लिए इसका अर्थ है देशवासियों का एक ऐसा समूह जिनके प्रति भारत के राष्ट्रपति की विशेष जिम्मेदारी है; एक नृतत्वशास्त्री के लिए यह सामाजिक घटनाओं का पढ़ने/समझने का एक विशिष्ट क्षेत्र इंगित करता है। अपने-अपने तरीके से ये सभी अनुभूतियाँ सही हैं।

1991 के आँकड़ों के अनुसार देश में जनजातीय लोगों की जनसंख्या लगभग 6.8 करोड़ थी। यह आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा और स्वीडन की समस्त जनसंख्या के लगभग बराबर है। 2001 तक इनकी अनुमानित जनसंख्या 8.44 करोड़ अर्थात् भारतीय जनसंख्या का लगभग 8.3 प्रतिशत हो जाने की उम्मीद है। चार राज्यों–मध्यप्रदेश (1.54 करोड़), महाराष्ट्र (0.73 करोड़), उड़ीसा (0.7 करोड़), और बिहार (0.66 करोड़) में भारत की कुल जनजातीय आबादी के लगभग 50 प्रतिशत लोग निवास करते हैं। वर्ष 1967 में भारत सरकार की केन्द्रीय सेवाओं की वर्ग 'अ' में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत 0.21 था जो 1998 में बढ़कर 3.21 हो गया। केवल वर्ग 'द' की सेवाओं में यह प्रतिशत कुछ अच्छा दिखाई पड़ता है जोकि 6.85 है। भारतीय जनजातीय जनसंख्या में गोंड जनसमूह की जनसंख्या सबसे अधिक है।

जनजातीय लोगों के जंगल और जमीन दो ही लगाव हैं।

श्रद्धेय डब्ल्यू. जे. कुलशॉ (W.J. Culshaw) लिखते हैं:–

संथाल के जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा उसकी अपनी वह जमीन है जिसे वह जोतता है...। जनजातीय जीवन और लोकाचारों की सुरक्षा से बड़ी कोई अन्य प्रेरणा जनजातीय लोगों की नहीं होती... और एक संथाल की जमीन न सिर्फ उसे आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है अपितु अपने पूर्वजों से जोड़ने की महत्वपूर्ण कड़ी हैं; और यह नए लोगों पर भी पुरानों से कम लागू नहीं होता क्योंकि ये तब तक इसे अपने अधिकार क्षेत्र में नहीं लेते जब तक की आत्मा कबूल न कर ले। जमीन उनकी आत्मिक और आर्थिक विरासत का हिस्सा है।

जनजातियों के पास जो बची-खुची जमीन है वह अविकसित है, विरल सिंचित है और बाजार से जुड़ी हुई भी नहीं है। खेतिहर जनजातियों की बढ़ती संख्या आज खेतों में उजरती मजदूर के रूप में काम करने के लिए मजबूर हैं।

समय के साथ-साथ और विज्ञान व तकनीकी में भारी प्रगति से हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप भारतीय जनजातीय समाज के सामने एक फैसले की घड़ी है। ढेबर आयोग ने कहा था:

आज हम नए युग के मुहाने पर खड़े हैं। जनजातीय लोग अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ इस युग में प्रवेश के लिए तैयार हैं। जनजातीय लोग केवल यही उम्मीद करते हैं कि ये परिवर्तन उनके जीवन की लयता को नष्ट न करें, और इस युग में प्रवेश के फलस्वरूप उनकी विशिष्टता दब न जाए।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने संविधान सभा में जनजातीय समस्याओं के समाधान हेतु नए रास्तों पर बोलते हुए कहा था:

मैं एक बात पर स्पष्टता चाहूँगा। क्या जनजातियों का भला चाहनेवाले लोगों की यह इच्छा है कि जनजातियों को उनकी वर्तमान स्थिति में हमेशा के लिए रखा जाए? मैं नहीं समझता कि यह उनके हित में है। मैं सोचता हूँ यह हमारा उद्देश्य होगा कि जनजातीय लोगों को जयपाल सिंह जी के स्तर तक लाया जाय।

यद्यपि आज जनजातियों के सामने चुनाव की घड़ी है कि वे बाहरी दुनिया के साथ मिल जाएँ और दुनिया के काम-धाम के साथ-साथ चल पड़े, परन्तु इस समेकन के परिणामस्वरूप कुछ असुखदायी संभावनाएँ भी उपस्थित हुयी हैं। इस समवेशी प्रक्रिया के फलस्वरूप प्रथमत: तो उनके अस्तित्व के मिट जाने का खतरा है। दूसरा, जो कि पहले के परिणामस्वरूप ही है, उनकी समुदाय-भावना पर आधारित उत्कृष्ट जीवन शैली, जो कि आर्थिक व्यक्तिवाद के दर्शन जिस पर वर्तमान नवीन दुनिया की प्रतियोगितावादी, उपभोक्तावादी संस्कृति आधारित है को नकारती है, को नष्ट हो जाना है। तीसरा, परम्परागत ज्ञान, जनजातीय कला, संस्कृति और जनजातीय चिकित्सा पद्धति का नष्ट होना है। छल-कपट और आर्थिक स्वार्थों पर आधारित मुखौटा लगाए आज की नई दुनिया धन और सत्ता के लिए सतत संघर्षशील है, किसी उच्च् आदर्श के लिए नहीं अपितु अपने आप में एक अन्त के रूप में। यह दर्शन व्यापारिक अनभिज्ञता वाली जनजातीय जीवन शैली से बिल्कुल ही भिन्न है, यद्यपि आज यह भी तथाकथित 'सुसंस्कृत मनुष्य' के हेल-मेल के कारण बहुत कुछ बदल रहा होगा। परन्तु मूर्ति भंजन की यह हवा जोकि सभी संस्थाओं के ऊपर बह रही है इस सीधी-साधी संस्कृति को अछूता नहीं छोड़ेगी।

जनजातीय कला की धनी दुनिया भारतीय कला की पच्चीकारी का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जनजातीय जीवन का वृहत दर्शन, जोकि मनुष्य की गहरी अंत: संस्कृति के तारतम्य में है आज उनके शताब्दियों से संजोये गए मूल्य गलन-पात्र में हैं। सच तो यह है कि वे बाहरी दुनिया में होने वाली गतिविधियों से हमेशा के लिए अछूते नहीं रह सकते। पर सवाल उठता है कि निरन्तरता और परिवर्तन, नूतनता और परम्परा और फिर बाहर की बहादुर नई दुनिया और जनजातीय जीवन की परम्परागत जीवन शैली के बीच तारतम्य कैसे बनाया जा सकता है। जनजातीय कला, संगीत, लोक कथाओं और परम्परागत ज्ञान की विरासत का संरक्षण कैसे किया जा सकता है। कैसे जनजातियों के नैसर्गिक जीवन को विकास के विनाशकारी प्रभावों से बचाया जाए। स्वतंत्र भारत में विकास परियोजनाओं का सबसे अधिक असर जनजातीय समुदाय पर ही पड़ा है। उनके पुनर्वासन की गति और प्रगति निराशाजनक रही है। इसी तरह विमुक्त जनजातियों के लोगों के साथ भी आमतौर पर प्रशासन, खासतौर पर पुलिस, द्वारा इसी तरह व्यवहार किया जाता है। संविधान सभा की उपसमिति ने कहा था:

आदिम क्षेत्रों की परिस्थिति को दूर कर आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास करने में इन क्षेत्रों के अपवर्जन और आंशिक अपवर्जन के परिणाम अच्छे नहीं रहे हैं। अपवर्जित क्षेत्रों की विधान सभाओं और स्थानीय समितियों में प्रतिनिधित्व कमजोर और अप्रभावी रहा है और आगे आनेवाले कुछ समय तक ऐसा ही बने रहने की संभावना है। शिक्षा के प्रति लोगों के झुकाव के स्पष्ट चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं। परन्तु इन आदिम जनजातियों की गरीबी के परिणामस्वरूप अच्छे अध्यापकों का अभाव बना हुआ है जिसके निदान के बिना असाक्षरता की समस्या का समाधान संभव नहीं। आदिम जातियों की उनकी खेतिहर जमीन से बेदखली और सूदखोरों की दासता से रक्षा करना परम आवश्यकता है।

उपसमिति ने चेतावनी देते हुए कहा:

जनजातीय लोग प्राय: अत्यन्त सीधे-साधे होते हैं जिनका मैदानी इलाके के लोगों द्वारा आसानी से शोषण किया जा सकता है और किया जाता है। इससे इनकी खेतीहर जमीन सूदखोरों के तथा अन्य खेतीहर लोगों के हाथ में चली जाती है...। जनजातीय लोगों के अपने रीति-रिवाज होते हैं और उनकी जीवन शैली होती है जोकि

जनजातीय और ग्राम पंचायतों और काउंसिलों के माध्यम से गाँव प्रशासन को बड़े प्रभावी व सुचारू रूप से चलाते हैं। जनजातीय रीति-रिवाजों और जीवन शैली के ज्यादा परिष्कृत और जटिल जीवन शैली के आकस्मिक प्रभाव में आने के बुरे परिणाम निकल सकते हैं।

यही कारण है कि नैतिक रूप से प्रदूषित बाहरी दुनिया से एल्विन ने जनजातियों को अलग-थलग रखने की बात की। उन्होंने लिखा:

जब तक कि आधुनिक जीवन ही सुधर नहीं जाता, जब तक सभ्यता स्वयं सभ्य नहीं हो जाती, जब तक यूरोप से युद्ध और भारत से अस्पृश्यता समाप्त नहीं हो जाती तब तक आदिवासियों को बदलने की कोशिश का कोई अर्थ नहीं है।

अच्छा होगा फिलहाल उन्हें वैसे ही रहने दिया जाए– हमेशा के लिए नहीं क्योंकि यह तो बेमतलब होगा। हो सकता है पच्चीस, पचास, सौ सालों में मानव की एक ऐसी जाति आए जो इन अच्छे लोगों को बिना कोई नुकसान पहुँचाए अपने समाज में आत्मसात करने की क्षमता रखती हो। ऐसे लोग आज नहीं हैं।

इसलिए मैं आदिम जाति के लोगों के लिए अस्थाई तौर पर अलग रखने तथा उनके सुरक्षा की नीति की वकालत करता हूँ, और साथ ही उनके सभ्य पड़ोसियों के तुरन्त सुधार की नीति की भी वकालत करता हूँ।

यदि आप आदिवासियों की सहायता करना चाहते हैं तो उन्हें सुधारने का प्रयास न करें: वकीलों, डॉक्टर, स्कूल मास्टर, सरकारी अफसरों और व्यापारियों को सुधारें जिनके साथ इनको व्यवहार करना पड़ता है। जब तक यह नहीं हो जाता आदिवासियों को अलग छोड़ना ही श्रेयस्कर होगा...।

यह अच्छी बात है कि सही दिशा में सोचने वाले बुद्धिजीवियों, नृतत्वशास्त्रियों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की एक बड़ी जमात इन मूल्यों की रक्षा तथा विकास के नाम पर होने वाले उनके शोषण के तरफ अपना ध्यान केन्द्रित कर रही है। उनके इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप जनजातीय हितों की रक्षा एक विशिष्ट अध्ययन का विषय बन चुका है। इन प्रयासों के अच्छे परिणाम भी आए हैं। सरकार और विकास से जुड़े अर्थशास्त्री तथा अन्य जनजातीय हितों की वकालत करने वाले समूहों के बीच मतभेद तेज हो गए हैं और इसके परिणामस्वरूप जनजातीय लोगों को प्रभावित करने वाली विकास नीतियों में परिवर्तन करना पड़ रहा है और साथ ही इन परियोजनाओं के दौरान मूल्यांकन कर आवश्यक संशोधन भी करने पड़ रहे हैं।

इस संभाषण का प्रमुख मुद्दा यह है कि जनजातीय क्षेत्रों के विकास की ऐसी नीति बनाए जाए जिंससे कि विकास कार्यक्रमों से प्राप्त फायदों का उचित हिस्सा जनजातीय लोगों को प्राप्त हो सके। साथ ही यह नीति परम्परागत ज्ञान को चिह्नित करें, उनका दस्तावेजीकरण करें ताकि यह पारम्परिक ज्ञान देश में प्राप्त हो सके और हमारी जनजातीय लोगों की 'आम विरासत' की सुरक्षा हेतु प्रभावी कदम भी उठाए जा सकें। यह कार्य डब्ल्यू. आई.पी.ओ. (W.I.P.O.) के जनरल एसेम्बली की जिनेवा में हुई 26वीं बैठक के फैसले के अनुरूप 'बौद्धिक सम्पदा और जैव संसाधनों, पारम्परिक ज्ञान एवं लोक-कथाओं पर अन्तर सरकारी समिति' ('इन्टर गवरमेंटल कमेटी ऑन इन्टलेक्चुअल प्रॉपर्टी एण्ड जेनेटिक रिसोर्सेज, ट्रेडिशन नॉलेज एण्ड फॉक लोर') की स्थापना से अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसे जल्द से जल्द करने की आवश्यकता है। परम्परागत ज्ञान, खोज तथा रचनात्मकता की सुरक्षा; लोक कथाओं, जिसमें कि हस्तशिल्प भी सम्मिलित है, की सुरक्षा, ये कुछ ऐसे मुद्दे थे जिन पर समिति के अप्रैल 2001 के पहले सत्र में चर्चा हुई थी। ये मुद्दे उन लोगों पर नहीं छोड़े जा सकते जिन्होंने अतीत में इस विषय वस्तु को अपनी रुढ़िबद्ध अटकलबाजियों के चलते तुच्छ बना दिया। इस मुद्दे की चर्चा में राष्ट्रीय सहभागिता की आवश्यकता है। ❑

हिन्दी उपन्यास और आदिवासी स्त्री

■ रमेश चन्द्र मीणा

आदिवासी समाज भारतीय परिप्रेक्ष्य में हाशिए पर रहा है। सदियो से शोषित रही भारतीय स्त्री की तुलना में आदिम स्त्री की दशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उपन्यास साहित्य में आदिवासी स्त्री की तस्वीर पूरी तरह से साफ व स्पष्ट नहीं है। उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ समाज सुधार, उपदेश व नीतिप्रधान विषय वस्तु से होकर इतिहास, फंतासी से होता हुआ समाज के यथार्थपरक चित्रण तक पहुँचता है। यथार्थवादी चित्रण में मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग सहित स्त्री वर्ग का साक्षात्कार होता है।

भारतीय उपन्यासों में किसान जीवन और नगरीय पृष्ठभूमि के अतिरिक्त भारतीय समाज के विविध पक्षों पर पचास के दशक के बाद लिखना आरम्भ हुआ। रेणु का 'मैला आँचल' से आंचलिक उपन्यास का आरम्भ माना जाता है। नगरीय जीवन की यांत्रिकता, एकरसता से ऊबे हुए उपन्यासकारों ने आंचलिक रचना को नयी जमीन तोड़ने के रूप में लिया। इन रचनाओं में आदिवासी हाशिए पर होते हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में जिसे हम आंचलिक उपन्यास कहते हैं, ऐसे उपन्यास आदिवासी जीवन का पर्याय नहीं है। गिरिजनों पर लिखे दर्जन भर उपन्यासों में ये केंद्रीय विषय बनकर उभरते हैं। हालाँकि आधी सदी गुजरने के बाद भी आदिवासी जीवन पर कथा साहित्य की ठोस परम्परा नहीं बन सकी है। आदिवासी समुदाय के गोंड, भील, उराँव और सहरिया जनजाति पर केंद्रित उपन्यासों में 'सहराना', 'गगन घटा घहरानी', 'नदी के मोड़ पर', 'जंगल के फूल', रथ के पहिये' और 'कलावे' प्रमुख हैं।

आदिम समाज में स्त्री के तीन स्तर हैं –कुछ ही ऐसी महिलाएँ हैं जो ऊँची शिक्षा पाकर सेवा या राजनीति में स्थान पाने में सफल होती हैं। दूसरे स्थान पर वे आती हैं–जो अर्द्धशिक्षित होकर अधकचरा ज्ञान पाकर ऊपर उठने का प्रयास करती हैं। तीसरे स्थान पर वे आती हैं–जो न शिक्षित हैं, न जिनमें दृष्टि है, और जो न उन्नत तकनीक का सहारा ले पाती हैं। ऐसी महिलाएँ परिवार और समाज दोनों जगह संघर्ष करती हैं।

सामाजिक दृष्टि से आदिवासी समाज का विश्लेषण करने पर स्त्री से सम्बन्धित रोचक तथ्य सामने आते हैं। मातृ प्रधान स्थानीय परिवार में स्त्री का स्थान सर्वोच्च होता है। जनजातीय विवाह प्रसंग लेखकों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। इनमें विवाह करना आवश्यक रस्म है– जो वधुमूल्य देकर या सेवा करके या भगाकर किया जाता है। विवाह के बाद यह सम्बन्ध हिन्दू परम्परानुसार बन्धन बनकर नहीं रह जाता। स्त्री विधवा होने या बेमेल शादी होने पर उसे त्याग कर दूसरा सम्बन्ध बना सकती है।

आदिवासी जीवन जितना जटिल, सपाट और रूढ़ है उतना ही व्यंजक है। उपन्यास साहित्य का कथ्य, परिवेश और विषयवस्तु आदिवासी जीवन पर केंद्रित रही है। सभी उपन्यासों की केंद्रीय समस्या साहूकारी और सामंती शोषण रहा है। आदिवासी स्त्री भुखमरी, तंगहाली, शोषण और विसंगतियों से ग्रस्त है।

आदिवासी स्त्री का संकट गैर-आदिवासी सम्पर्क से बढ़ गया है। गैर आदिवासी धर्मों के प्रभाव के रूप में हिन्दूकरण, ईसाईकरण और मुस्लिम काल में मुस्लिम प्रभाव देखा जा सकता है। आदिम धर्म 'सरना' है। इनका देवता इनका (बोंगा) मित्र है, जो पेड़ों पर रहता है। एक आदिवासी का धर्म, उसकी पहचान, आदिवासी है, जो

संकट से गुजर रहा है। उन पर नया धर्म थोपा जा रहा है।

आदिवासी स्त्री की सांस्कृतिक पहचान खत्म हो रही है। जिन जंगलों में सदियों से उनका निवास रहा है, वे घट रहे हैं, छीने जा रहे हैं, जमीन से विस्थापित हो रहे हैं...और उनके इलाकों में गैर आदिवासियों के बसने से उनकी भाषा व पहचान खत्म हो रही है। उनके द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र, किये जानेवाले नृत्य दूसरी निगाह से देखे जाते हैं। फलस्वरूप उनकी संस्कृति मिटती है, उनकी पहचान भी समाप्त हो जाती है।

आदिवासी भारत के मूलवासी हैं। आदिकाल से इन्होंने अनार्यों से मृत्युपर्यंत युद्ध किये और पूर्व की ओर धकेले जाते रहे। कोशल और मगध देश की सेनाएँ इनके विरुद्ध अभियान में जुटी रहती थीं। महाभारत में नाग एवं मुण्डा आदिवासी कौरवों की तरफ से युद्ध में भाग लेते हैं।

इतिहासकारों ने आदिवासी विद्रोही औरतों को इतिहास के पन्नों पर जगह नहीं दी। आर्यों ने आदिम कन्याओं से विवाह अवश्य किया पर उनको, अपने समाज में शामिल नहीं किया। विक्रमादित्य द्वारा नाग कुमारी से विवाह करना एक बड़ा उदाहरण है। शबरी एक प्रतीक है आस्था का, कि यदि अवसर मिले तो आदिवासी स्त्री भी भारत-निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकती है।

आदिवासी स्त्री संघर्ष में पीछे नहीं रही। शोषण व दमन के खिलाफ आदिवासी स्त्री ने जमकर मुकाबला किया। तुर्क सेना द्वारा रोहतासगढ़ पर किये गये हमले का मुकाबला सिनगी दई और कइली दई के नेतृत्व में किया गया। संथाल विद्रोह में सिद्धो, कानों चाँद और भैरव की दो बहनों-फूलों और धानों ने अंग्रेजों का जमकर सामना किया। यह जानकारी लोकगीतों, जनश्रुतियों और लोककथाओं से मिलती है। इतिहास की पुस्तकों में इन्हें उचित स्थान मिलना बाकी है।

आदिवासी जीवन पर लिखे उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय-

'रथ के पहिये' (1953) मोहनजोदड़ो में दबी प्राचीन सभ्यता से गोंडों की वर्तमान संस्कृति तक की यात्रा है। यदि इनकी तरफ समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो इनकी संस्कृति गहरे दफन होकर रह जाएगी। कथ्य में आदर्शवादी सोच और उपदेश की प्रधानता है। गाँधीवादी आदर्श और शिक्षा पर बल दिया गया है। उपन्यास यात्रा-वृतांत और काव्य-गीत के बीच झूलता प्रतीत होता है।

'जंगल के फूल' (1960)- गोंड जीवन पर आधारित है। कृति में घोटुलों का महत्व, उनके विश्वास, भूत-प्रेत, अधिकारों के प्रति सजगता, आन्दोलन में कंधे से कंधा मिलाती स्त्री हैं। कई उपकथाएँ कथावस्तु को शिथिल नहीं होने देतीं।

'कलावे' (1960)-भीलों की प्रजाति 'कलावे' पर आधारित है। प्राकृतिक विपदाओं से लड़ते बीमारियों से जूझते, साहूकारी आतंक में जीते और सरकारी वन नीति का विरोध करते आदिवासी हैं। यह वाद-निरपेक्ष कृति है।

'नदी के मोड़ पर' (1968)-भीलों के स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित है। पुलिस प्रताड़ना की शिकार स्त्री, पत्रकारों की कर्त्तव्यहीनता, लायंस क्लब द्वारा की जा रही सेवा की वास्तविकता उजागर करता है। लेखकीय आदर्श यथार्थ से परे है।

'गगन घटा घहरानी' (1991)-उराँवों के जीवन संघर्ष पर आधारित है। सामाजिक रूढ़ रीतियों से बँधा उराँव, ऋण लेकर बंधक बनते और जमींदार के शोषण का विरोध करते आदिवासी हैं। बँधुआ जीवन का सजीव चित्र है। आदिवासी स्त्री पुलिस व जमींदारी शोषण का शिकार है। उपन्यास में आदिवासी लोकरंग और आपसी सम्बन्धों का सघन परिचय मिलता है।

'सहराना' (1998)-सहरिया स्त्री पर आधारित है। रूढ़ मान्यताओं का विरोधा करती दबंग स्त्री, सास-बहू के विभिन्न रूप, रूढ़ियों का विरोध करती स्त्री हैं, ... तो लड़की पैदा होने पर खुश होते सहरिया हैं। जमींदार सेठ और ब्राह्मणों का गठबंधन सहरियाओं के खिलाफ है। भूमि के लिए संघर्ष करते, टूटते-बिखरते और विस्थापित होते सहरिया समाज का यथार्थपरक चित्रण है। तीज-त्यौहार पर गाते-बजाते भूखे-नंगे आदिवासी आधुनिक संक्रमण से गुजर रहे हैं। नेताओं के खोखले आश्वासन से ठगे जाते, औद्योगिक विसंगति को भोगते

सहरिया हैं।

आदिवासी जीवन जितना जटिल, सपाट और रूढ़ है उतना ही व्यंजक है। उपन्यास साहित्य का कथ्य, परिवेश और विषयवस्तु आदिवासी जीवन पर केंद्रित रही है। सभी उपन्यासों की केंद्रीय समस्या साहूकारी और सामंती शोषण रहा है। आदिवासी स्त्री भुखमरी, तंगहाली, शोषण और विसंगतियों से ग्रस्त है।

आदिवासी स्त्री बाहरी तौर पर आजाद और रोमानी नजर आती है जबकि अंदर से उतनी ही दलित, शोषित और प्रताड़ित है। गैर आदिवासी द्वारा इन्हें वस्तु से अधिक महत्व नहीं दिया गया। वह रखैल, वेश्या, सस्ती मजदूर, डायन मानकर मारा जाना, हल को वह छू नहीं सकती, छत नहीं छा सकती, सम्पत्ति में उसका अधिकार न होना जैसे सवाल उपन्यास साहित्य में ठीक से नहीं उठाये जा सके। आदिवासी स्त्री और आम भारतीय स्त्री में भेद नहीं किया जा सकता। आदिवासी स्त्री और दलित-स्त्री एक दूसरे का पर्याय नहीं हो सकती। लेखकीय आदर्शवादिता पर रोमानियत और काल्पनिकता हावी रही है।

भारतीय आदिवासी समस्याग्रस्त हैं। सरकारी परियोजनाओं, औद्योगिक संस्थानों तथा बाँध निर्माण तथा इनसे उत्पन्न समस्याओं को आदिवासी स्त्री को अधिक भोगना पड़ता है। जंगल संबंधी सरकारी नीतियाँ इनकी अर्थव्यवस्था व परम्परा के प्रतिकूल हैं। फलत: आदिवासी स्त्री को जंगल के नाकेदार व ठेकेदार के अनुचित व्यवहार तथा घरेलू जिम्मेदारी दोनों को निभाना होता है।

भूमिहीन आदिवासी सामाजिक परम्पराओं को निभाने के लिए साहूकारों से ऋण लेते हैं जिसे आने वाली पीढ़ी भी नहीं चुका पाती (गगन घटा घहरानी)। उराँव रूढ़ सामाजिक परम्परा निभाने के लिए ऋण लेता है और साहूकार का बंधक बन जाता है। साहूकार कई गुना सूद लेते हैं (नदी के मोड़ पर)। जमींदारी शोषण, ऊँची ब्याज दर और भूमिहीन होते आदिवासी का चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है।

गरीबी, बेकारी और विस्थापन में जीते आदिवासी रोजगार न मिलने पर भुखमरी के शिकार होते हैं। आदिवासी स्त्री बेगार करके घर को चलाने का कार्य करती है। आदिवासी अशिक्षित हैं इसलिए गरीब हैं और शिक्षा के प्रति उदासीन हैं। पहले तो जंगलों में स्कूल खुलता ही नहीं और यदि खोला जाता है तो स्वयं आदिवासी रूढ़ि के कारण उसका विरोध करते हैं (जंगल के फूल)। जो हो, ईसाई मिशनरियों के प्रयास से अब परिवर्तन आ रहा है।

आदिवासी शिक्षित महिलाएँ नगण्य हैं। महिला शिक्षा में अनेक बाधाएँ हैं। गरीबी, घरेलू कार्य, बाल विवाह तथा मातृभाषा में शिक्षा न मिल पाना। इसके अलावा गैर आदिवासी शिक्षकों का नकारात्मक रवैया तथा सरकारी योजनाओं में कमी आदि भी आदिम महिलाओं की शिक्षा में बाधा स्वरूप हैं।

भारतीय स्त्री और आदिवासी स्त्री की तुलना बेमानी है। गरीब आदिवासी स्त्री की स्वतंत्रता सराहनीय व अनुकरणीय है। वह खेत-खलिहान व जंगल में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। आम स्त्री चारदीवारी में कैद है, वह कमनीय है। जो सहज आनंद की अनुभूति और स्वच्छन्दता की शक्ति आदिवासी स्त्री में है वह द्विजों में नहीं दिखाई देती। आदिवासी लड़की बचपन से वृद्धावस्था तक समानता से जीती है। जीवन साथी का चुनाव हो या पुनर्विवाह, वह पति का भरपूर प्यार पाती है।

आदिवासी परम्परा में लड़की को लड़के से कम नहीं माना जाता है। इसलिए यदि अवसर व संरक्षण दिया जाए तो आदिवासी स्त्री शिक्षित होकर अपना विकास कर सकती है। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में देना तथा उनकी बस्ती के नजदीक स्कूल होना आवश्यक है। विकास परियोजनाओं से आदिवासी समाज का भला नहीं हो सका है। आदिवासी विस्थापित, बेरोजगार और भूमिहीन हुए हैं। पारिवारिक व सामाजिक विघटन तथा पति-पत्नी

सम्बन्धों में कड़वाहट, तनाव व टूटन देखा जा सकता है। सामूहिक भावना को चोट पहुँच रही है। आदिवासी स्त्री के शोषण का दोहरा रूप सामने आ रहा है, लेकिन उपन्यास साहित्य में इस दृष्टि से शून्यता है।

भारतीय स्त्री और आदिवासी स्त्री की तुलना बेमानी है। गरीब आदिवासी स्त्री की स्वतंत्रता सराहनीय व अनुकरणीय है। वह खेत-खलिहान व जंगल में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। आम स्त्री चारदीवारी में कैद है, वह कमनीय है। जो सहज आनंद की अनुभूति और स्वच्छन्दता की शक्ति आदिवासी स्त्री में है वह द्विजों में नहीं दिखाई देती। आदिवासी लड़की बचपन से वृद्धावस्था तक समानता से जीती है। जीवन साथी का चुनाव हो या पुनर्विवाह, वह पति का भरपूर प्यार पाती है। हिन्दू स्त्री की तरह शक के नाम पर घुट-घुटकर जीने के लिए अभिशप्त नहीं है। वह न तो मध्यवर्गीय अहं से पीड़ित है और न ही अतृप्त काम-सम्बन्धों से उत्पन्न मानसिक रोगों का शिकार है। वह अपने पति के अत्याचार सहने के लिए बाध्य नहीं है। अपितु नया जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र है। यह आजादी आम स्त्री को मिलना बाकी है। वे दहेज के दानव से भी मुक्त हैं।

आदिवासी स्त्री उतनी आजाद नहीं है अपितु पुरुष मानसिकता की वह भी शिकार है। बच्चा न होने पर स्वयं पति को दूसरी शादी के लिए मनाती है। वह पुरुष में पौरुष पसंद करती है। वह अपने खिलाफ अन्याय व शोषण के होने पर आवाज उठाने से नहीं चूकती। आदिवासी स्त्री की पीड़ा, संत्रास के साथ जद्दोजहद व संघर्ष की भावना की अभिव्यक्ति उपन्यासों में मिलती है।

आधुनिकीकरण की दौड़ में आदिवासी स्त्री भारतीय स्त्री की तुलना में अविकसित जनसमूह का हिस्सा भर है। जो समूह औद्योगिक संस्थानों के नजदीक हैं, उनमें आधुनिकता का संचार सुदूर जंगलों में रहने वालों की तुलना में अधिक हुआ है। आदिवासी स्त्री का सामाजिक पक्ष उपन्यासों में प्रमुखता से उभरा है।

आदिवासी महिला को विशेष सरंक्षण देने की महती आवश्यकता है। संवैधानिक संरक्षण के बावजूद आदिम स्त्री का सरकारी सेवा में नगण्य स्थान है। महिलाओं को दिये जाने वाले 33 प्रतिशत आरक्षण से आदिम अर्द्धशिक्षित महिला को कोई फायदा नहीं मिल सकता, क्योंकि अधिकांश लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा से आगे बढ़ ही नहीं पातीं। यदि सही मायनों में आदिवासी महिला का विकास वांछनीय हो तो उसे शिक्षा प्राप्त करने का पूरा-पूरा अवसर मिले। शिक्षा प्रदान करने के तरीके उनकी संस्कृति और परिवेश के अनुकूल हों तथा शिक्षा के बाद सरकारी सेवा में विशेष अवसर प्रदान किये जाए। आदिवासी आरक्षण इस मायने में अधूरा है। आदिवासी आरक्षण में भी स्त्री को विशेष आरक्षण प्रदान करना होगा।

आदिवासी महिला की भागीदारी राष्ट्रीय कार्यक्रमों में निश्चित की जाए। आम आदिम स्त्री विकास के नाम पर किये जाने वाले हर कार्य को अपने खिलाफ मानती है। अब तक राष्ट्रीय विकास के नाम पर उसके जंगल, जमीन और पानी छीने जा चुके हैं, बची-खुची जीवन शैली औद्योगिकीकरण के नाम पर होम की जा रही है।

आदिवासी स्त्री का जीवन गैर आदिवासी रचनाकारों द्वारा चित्रित किया जा सकता है? किसी भी रचनाकार के आदर्श, उसके विचार यूँ ही नहीं बन जाया करते, उनका आधार साधक रचनाकार की लम्बी जीवन साधना ही हो सकती है जो उसके अध्ययन, चिंतन उसके सामाजिक परिपार्श्व और उसके व्यक्तिगत अनुभवों की एक लम्बी अनकही शृंखलाओं को जोड़ती है। जो हो, यह सब आदिवासी रचनाकार उचित तरीके से कर सकता है। आदिवासी समुदाय की प्राचीनतम समृद्ध संस्कृति को उजागर करने तथा आदिवासी जीवनमूल्यों के विपरीत तथ्यों को नकारने का साहस वही कर सकता है। वह अपने जीवन मूल्यों को भी सोच-समझकर अपनायेगा तथा आदिवासी अस्मिता को बचाये व जगाये रखने का प्रयास करेगा।

जब तक आदिवासी रचनाकार अपने अनुभव को साहित्य में नहीं ढाल पायेंगे तब तक आदिम संस्कृति संकट में ही रहेगी। आज आदिवासी अस्मिता खतरे में है। आदिवासी अस्तित्व कायम रहे, इसके लिए आदिम संस्कृति की पराजय की खोज करने वाले साहित्य का इंतजार करना ही होगा। ❑

(अरावली उद्घोष, जन.-मार्च, 2003 से साभार)

महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं बौद्ध संस्कृति

■ तुलसीराम

महापंडित राहुल सांकृत्यायन को याद करते हुए, साथ में आदरणीय अध्यक्ष महोदय श्री गोपाल शास्त्री जी, पूर्व राज्यपाल श्री सत्यनारायण रेड्डी साहब, सभा के संचालक प्रो. मैनेजर पाण्डेय साहब तथा अनिल पाण्डेय और उपस्थित विद्वानों।

मैं जानता हूँ कि आप जो श्रोतागण हैं, सभी विद्वान हैं। ऐसे विद्वत समाज में बोलना, खासकर, मेरे जैसे एक बहुत ही छोटे व्यक्ति के लिए बड़ा मुश्किल है। फिर भी मैं यह कोशिश करूँगा कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन जिस परम्परा के यात्री थे उस रास्ते का अनुसरण मैं अपने वक्तव्य में करूँ।

प्रो. पाण्डेय ने पहले ही राहुल सांकृत्यायन के बारे में बहुत कुछ बताया और थोड़ा मेरे बारे में भी। आप लोगों को मैं एक व्यक्तिगत चीज बताता हूँ राहुल सांकृत्यायन के सन्दर्भ में कि उनके गाँव और मेरे गाँव के बीच में सिर्फ एक गाँव का अन्तर है। वे मेरे पड़ोसी हैं। मैं बचपन में जब स्कूल में पढ़ता था तो राहुलजी के गाँव के एक शिक्षक थे पारसनाथ पाण्डेय। अनिल पाण्डेय जानते होंगे। वे हम लोगों को सातवीं-आठवीं कक्षा में हिन्दी पढ़ाते थे। मैं उस समय तक राहुलजी के बारे में कुछ भी जानता नहीं था। वे कहा करते थे कि हमारे ही खानदान के राहुलजी हैं, लेकिन जब तक गाय का माँस सुबह नाश्ते में न आ जाय, तब तक नाश्ता नहीं करते हैं। और कहते थे कि हमारे ही खानदान का है, मगर क्या किया जाए, बड़ा ही हिन्दू भ्रष्टक है। उनका यह कहना मेरे लिए राहुल के प्रति पता नहीं क्यों एक अजीब-सा ग्लैमर पैदा कर दिया। और मैं ढूढ़ता रहा कि राहुल सांकृत्यायन ने क्या लिखा है, क्या किया है, क्योंकि वे पड़ोसी भी थे, किन्तु मैं जानता भी नहीं था। पारसजी सिर्फ एक ही किताब का नाम बताते थे, 'वोल्गा से गंगा'। यद्यपि वे उसको पढ़े नहीं थे, लेकिन कहते थे कि 'वोल्गा से गंगा' रूस में छपी है। वे राहुल को 'कम्युनिस्ट' कहकर आलोचना करते हुए विशेष रूप से गोमाँस पर नाराजगी व्यक्त किया करते थे। अन्ततोगत्वा राहुलजी के ग्लैमर ने मुझे उनके ही कदमों पर चलने के लिए मजबूर कर दिया। फलत: उन्हीं के रास्ते पर मैं मार्क्सवादी तथा बुद्धिस्ट बन गया। आज जो मुझे विषय दिया गया है वह है बौद्ध संस्कृति। मैं इसी पर ध्यान केन्द्रित करूँगा, उनके मार्क्सवादी पहलू पर नहीं बोलूँगा।

सेन्टपीटर्सवर्ग में सन् 1840 में जन्में ईवान मीनाएव नाम के एक बौद्ध विद्वान रहते थे। वे पाँच-छ: बार भारत आए थे। तीन सौ वर्ष पूर्व जब पीटर महान ने पीटर्सवर्ग की स्थापना की तो उसके कुछ साल बाद वहाँ बौद्ध अध्ययन का केन्द्र भी खोला गया, जिसे 'भारतीय अध्ययन केन्द्र' के नाम से जाना जाता था। यहाँ बौद्ध दर्शन पर विशेष रूप से शोध किया जाता था। अपनी यात्राओं के दौरान मीनाएव लोकमान्य तिलक, बंकिमचंद्र, तथा डब्ल्यू. सी. बनर्जी जैसी महानुभूतियों से मिले थे।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने सैकड़ों किताबें लिखीं, जिनमें एक किताब 'बौद्ध संस्कृति' भी है, जो 1952 में छपी थी। उसकी कापियाँ इस समय कहीं मिलती नहीं। साहित्य अकादेमी की लाइब्रेरी में एक

कापी वर्षों पहले देखा था, पता नहीं वह भी इस समय वहाँ है कि नहीं। उन्होंने उस किताब के पहले ही पैराग्राफ में लिखा कि संस्कृति को धर्म से नहीं जोड़ा जा सकता। संस्कृति का संबंध जाति और देश से होता है। राहुल जी ने यह भी लिखा था कि अगर बौद्ध धर्म से संस्कृति को जोड़ा जाए तो यह सुनने में बड़ा अटपटा लगेगा। लेकिन उनका एक अन्य वाक्य जो मुझे याद आ रहा है वह बहुत महत्वपूर्ण है, जो पूरे भारत के समाज को उजागर करता है, जहाँ से बौद्ध दर्शन को गायब कर दिया गया जिसके बाद एक तरह से, बौद्ध संस्कृति करीब-करीब समाप्त हो गई। बौद्ध संस्कृति शांति, बराबरी और भाइचारे की संस्कृति थी। राहुलजी के अनुसार, जैसे एक मिट्टी के घड़े में घी या तेल को कुछ दिन रख दीजिए और फिर उसे निकाल लीजिए, घड़ा खाली छोड़ दीजिए। फिर भी घड़ा जो सोख लेता है, उसकी गंध उसमें व्याप्त हो जाती है। उसके सोखने से घड़ा का रूप-रंग भी बदल जाता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने भारत रूपी घड़े में बौद्ध दर्शन को तेल और घी की तरह देखा है, भले ही उसको निकाल कर फेंक दिया गया हो लेकिन गंध अभी भी है, उसका रंग अभी भी उसमें व्याप्त है। राहुलजी ने इस तरह से 'संस्कृति' को पारिभाषित किया था। इसी संदर्भ में उन्होंने एक और वाक्य कहा था कि बौद्ध दर्शन जिस देश में भी गया, उस देश में वहाँ का ही चोला इसने पहन लिया। इसलिए इसका झगड़ा वहाँ के प्रचलित धर्मों से नहीं हुआ, दंगे-फसाद नहीं हुए। यह एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है। बौद्ध धर्म जापान में गया, मंचूरिया में गया, चीन में गया, कहाँ-कहाँ नहीं गया।

चोला पहनने वाली बात राहुलजी के लिए शोध पद्धति सिद्ध हुई। उन्होंने भारत से लेकर श्रीलंका, वर्मा, जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप तथा मध्य एशिया तक ऐसा देखा। बाली द्वीप में तो उन्होंने बहुत सूत्रवत खोज किया है। जैसे बौद्ध संस्कृति के बड़े प्रतीक अनेक बोधिसत्व थे, उसमें एक मंजूश्री भी थे और मंजूश्री की मूर्ति भारत में कहीं नहीं मिलती थी, उन्होंने मंजूश्री की लकड़ी की मूर्ति बाली द्वीप में ढूँढ़ निकाला और पहली बार इसका जिक्र हुआ कि बाली द्वीप में मंजूश्री की मूर्ति लकड़ी की है क्योंकि लकड़ी में मूर्तियाँ बनाने का वहाँ प्रचलन था। इसी तरह से अनेक खोजें राहुल सांकृत्यायन ने किया। अभी तीन-चार साल पहले नागपुर से 40 किलोमीटर दूर एक जगह मंसर कहलाती है, वहाँ पहाड़ी है उसको 'नागार्जुन टेकड़ी' कहते हैं। कहा जाता है कि 'माध्यमक' के महान रचयिता नागार्जुन, जो दक्षिण भारत के बुद्धिष्ट दार्शनिक थे, पाँचवीं-छठी शताब्दी में वहाँ रहते थे, इसलिए उसको 'नागर्जुन टेकड़ी' कहते हैं। टेकड़ी मराठी में पहाड़ी को कहते हैं। वहाँ एक जापान के भिक्षु ने खुदाई करवाया, जिसका नाम सुरई ससाई है। वे नागपुर में पिछले 30-40 साल से रहते हैं। मुझे खुद मंसर ले गए थे। वहाँ मुझे सबसे रुचिकर चीज खुदाई में मिली एक बौद्ध स्तूप की अर्द्धचन्द्राकार दीवार थी और उस दीवार के अन्दर एक समानान्तर अर्द्धचन्द्राकार अन्यं दीवार थी, जिसमें मंदिर की निशानियाँ और बलि देने के लिए बलि स्थल बना हुआ था। झंडा गाड़ने की वेदी जैसे होती है उसमें किसी बाँस को डाल दीजिए, ऐसा गड्ढ़ा भी मिला। यह देखकर मैं हैरत में पड़ गया। जिस ध्वस्त संस्कृति की बात राहुलजी करते हैं कि बौद्ध मठों को, स्तूपों को तोड़कर कैसे हिन्दू मंदिर बनाए गए, उसका जीता-जागता उदाहरण अभी तीन साल पहले जापानियों द्वारा करोड़ों रुपए की लागत से कराई गई खुदाई में मुझे मिला। मैंने इस खुदाई का विस्तृत वर्णन दो लम्बे लेखों में किया था। इस सन्दर्भ में रोचक तथ्य यह भी है कि खुदाई में पत्थर की मंजूश्री की एक मूर्ति मिली है जो थोड़ी टूटी-फूटी है। मैंने मंजूश्री की मूर्ति देखा और वह दृश्य भी देखा कि कैसे बौद्ध स्तूप को तोड़कर मंदिर उसके अन्दर बनाया गया था। बलि वेदी मिली, बलि चढ़ाने की, जैसा कि यह वैदिक परम्परा थी।

शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के नेतृत्व में जब बुद्ध-विरोधी अभियान चलाया गया तो बंगाल का राजा बोध गया में बोधि-वृक्ष को कटवाया। प्रामाणिक रूप से यह तथ्य मैं स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा लिखित शंकराचार्य की आत्मकथा से दे रहा हूँ जिसे रामकृष्ण मठ ने छापा है। उसमें उन्होंने कहा है कि उसकी जड़ों को खोद-खोद

कर दूर तक काटा गया, क्योंकि पीपल और बरगद के पेड़ की थोड़ी भी जड़ रहती है तो उसमें से पेड़ फिर निकल जाता है। बोधगया में ही कुमारिल भट्ट की पुरोहितगिरी में अश्वमेघ यज्ञ कराया गया और बलियाँ चढ़ाई गईं। अत: बलि की प्रथा को उस समय बौद्धों पर विजय के रूप में देखा जाता था। नागपुर के पास 'मंसर' का जो अवशेष मिला है, उससे भी जाहिर होता है। इसी विलुप्त बौद्ध संस्कृति को खोजने की राहुल सांकृत्यायन ने पहली बार कोशिश की थी। और संयोग की बात यह है कि वे जिस समय यह कोशिश करना चाहते थे उसी समय उनका निधन हो गया। वे इसके लिए तिब्बत भी जाना चाहते थे क्योंकि बहुत सारी बौद्ध पुस्तकें और पाण्डुलिपियाँ गायब हो गई थीं। अभी शास्त्रीजी ने कहा कि राहुलजी ने 22 खच्चरों पर लादकर पुस्तकें लाया था। वास्तव में उन्हीं 22 खच्चरों पर लाई गई जो पाण्डुलिपियाँ थीं उनमें दो अद्‌भुत ग्रन्थ उन्होंने ढूँढ़ कर लाया था। एक था धर्मकीर्ति का 'प्रमाण-वार्तिकम्' और दूसरा सरहपा जो सिद्ध कवि थे, का 'दोहाकोष'। ये दोनों अमूल्य निधि थीं। धर्मकीर्ति के 'प्रमाणवार्तिकम् की खोज का जब समाचार कुछ समाचार पत्रों में छपा तो लेनिनग्राद, जो आज सेन्टपीटर्सवर्ग हो गया है फिर से, वहाँ के दो महान विद्वान ओल्डेनवर्ग और श्चेर्वात्स्की को जब पता चला कि राहुल सांकृत्यायन नाम के किसी व्यक्ति ने प्रमाणवार्तिकम् की खोज की है तो उन लोगों ने राहुल से सम्पर्क करना शुरू किया। और इस तरह राहुलजी का रूस से संबंध शुरू हुआ। मैं आगे चलकर उन्हीं तथ्यों का वर्णन करूँगा, जिन्हें ढूँढ़ने का प्रयास राहुलजी ने किया था किन्तु अपने जीवन में वे कर नहीं पाए।

बौद्ध धर्म, संस्कृति जिन-जिन रास्तों से दुनिया में गई थी, उन रास्तों पर राहुल सांकृत्यायन चले थे। इन रास्तों पर चलते हुए कहाँ-कहाँ उनको रूकावटें मिली, कहाँ से वे आगे नहीं जा सके, आज मैं अपने भाषण का वही मुद्दा बनाऊँगा। प्रो. पाण्डेयजी ने थोड़ा जिक्र भी किया है कि रूस में कुछ खोज मेरी भी है। इस मायने में मेरा प्रयास संस्कृति से जुड़ा है। राहुल सांकृत्यायन ने एक जगह जिक्र किया है कि बुखारा की प्रख्यात नीली मस्जिद एक बौद्ध मठ था और उसको विहारा कहते थे। रूसी भाषा में 'ह' को 'ख' कहते हैं। इसलिए वह 'विखारा' कहलाया। इसी को आज बुखारा कहते हैं। कई लोगों को मैंने कहते हुए सुना कि राहुल ऐसे ही तुकबन्दी करते थे। मुझे हैरत होती है। अभी तीन साल पहले एक फारसी विद्वान ने 'ईरान में बौद्ध धर्म' नामक एक लेख लिखा जिसमें कहा गया है कि बुखारा में 12वीं-13वीं शताब्दी में एक साप्ताहिक बाजार लगता था, जिसमें बुद्ध की मूर्तियाँ बेची जाती थी। तब मुझे राहुलजी की याद आई। उस नीली मस्जिद की जगह स्थित बौद्ध विहार को तैमूरलंग के जमाने में तोड़ा गया था।

इस तरह राहुलजी ने जहाँ तहाँ किसी छोटे-मोटे तथ्य का भी उल्लेख कर दिया है, उनसे बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ उजागर हो जाती हैं। यदि उस समय सोवियत सरकार राहुलजी को बौद्ध संस्कृति के अध्ययन के लिये मध्य एशिया या साइबेरिया जाने के लिये आज्ञा प्रदान कर दी होती तो सम्भवत: वे उसके बहुत बड़े इतिहास को दुनिया के सामने ला सकते थे, किन्तु ऐसा नहीं हो पाया।

राहुलजी ने रूस की पहली यात्रा 1935 में की थी। वे वहाँ मंचूरिया से गए थे। उस समय वे बौद्ध भिक्षु थे और चीवर भी पहनते थे, लेकिन रूसी यात्रा के समय स्तालिनवाला जमाना था, उन्होंने अपना चीवर एक गठरी में डाल लिया था और सामान्य कपड़े पहनकर ट्रेन द्वारा मास्को पहुँचे। सबसे पहले वह श्चेर्वात्स्की से मिलने रशियन साइंस अकादमी गए, तो पता चला कि वे लेनिनग्राद में रहते हैं और ओल्डेनवर्ग के बारे में पूछा तो पता चला कि उनकी मृत्यु हो चुकी थी। राहुलजी श्चेर्वात्स्की को ढूँढ़ते हुए लेनिनग्राद पहुँचे। उनके सम्पर्क

में आने के बाद वह साइबेरिया तथा मध्य एशिया की बौद्ध संस्कृति को जानने में रुचि लेने लगे। श्चेर्बात्स्की से पहले सेन्टपीटर्सवर्ग में सन् 1840 में जन्में ईवान मीनाएव नाम के एक बौद्ध विद्वान रहते थे। वे पाँच-छ: बार भारत आए थे। तीन सौ वर्ष पूर्व जब पीटर महान ने पीटर्सवर्ग की स्थापना की तो उसके कुछ साल बाद वहाँ बौद्ध अध्ययन का केन्द्र भी खोला गया, जिसे 'भारतीय अध्ययन केन्द्र' के नाम से जाना जाता था। यहाँ बौद्ध दर्शन पर विशेष रूप से शोध किया जाता था। अपनी यात्राओं के दौरान मीनाएव लोकमान्य तिलक, बंकिमचंद्र, तथा डब्ल्यू. सी. बनर्जी जैसी महानुभूतियों से मिले थे। उन्होंने भारत की सभी प्रमुख बौद्ध स्थलियों का दौरा किया था। मीनाएव संस्कृत के विद्वान थे तथा सेन्टपीटर्सवर्ग

इस पृष्ठभूमि में सोवियत सरकार द्वारा राहुल सांकृत्यायन को मध्य एशिया तथा साइबेरिया जाने की इजाजत न देना बौद्ध संस्कृति की खोज के लिये एक अपूरणीय क्षति सिद्ध हुई।

में संस्कृत अध्ययन के संस्थापकों में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। बौद्ध दर्शन पर वृहद शोध के उद्देश्य से सेन्टपीटर्सवर्ग में आज भी संस्कृत की पढ़ाई होती है, जिसका कार्य स्वयं रूसी करते हैं। सेन्टपीटर्सवर्ग में मीनाएव ने संस्कृत पढ़ाने का कार्य स्वयं किया करते थे। वे पहले रूसी थे, जिन्होंने सेन्टपीटर्सवर्ग में प्राकृत भाषा का अध्ययन शुरू कराया था। ईवान मिनाएव ने जिस बौद्ध परम्परा की शुरुआत की थी उसके अत्यंत मेधावी उत्तराधिकारी श्चेर्बात्स्की थे। वे मिनाएव के प्रिय शिष्यों में से एक थे। सन 2000 में अपनी सेन्टपीटर्सवर्ग की यात्रा के दौरान मुझे यह जानकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि रूसी जार के शीतकालीन महलों (हरमिताज) में से एक महल में 'इंस्टीट्यूट ऑफ ओरिएटल स्टडीज' स्थित है, जिसमें वर्तमान रूस के सबसे बड़े संस्कृत भाषा के विद्वान वेलेरी रुदोई रहते हैं। उनके कमरे में उनकी कुर्सी वाले मेज के सामने वाली कुर्सी पर मैं बैठा था। मैं मेज पर रखी हुई पुस्तकों को उठाकर देखने लगा। किताबों के शीर्षकों को पढ़कर हैरत में रह गया। एक वृहद पुस्तक पाँचवी सदी के महान बौद्ध भिक्षु बसुबन्धु द्वारा रचित 'अभिधम्मकोश' का रूसी अनुवाद थी। दूसरी पुस्तक संस्कृत व्याकरण के ऊपर थी। रूसी भाषा में इन पुस्तकों को देखने से पता चला कि रुदोई ने अपना सम्पूर्ण जीवन संस्कृत तथा बौद्ध-दर्शन को समर्पित कर दिया है।

पास में स्थित व्लादिमीर पैलेस में बौद्ध संस्कृति से संबंधित 60 हजार पाण्डुलिपियाँ लोगों ने मुझे दिखायी। सोवियत संघ का पतन हो चुका है लेकिन जहाँ-जहाँ भी रूस में बौद्ध विद्वानों के 'सर्किल' में मैं गया, मैंने पाया कि रूस के पतन के बाद अब लोग नेहरूजी को याद नहीं करते हैं, न ही इंदिरा गाँधी को। किन्तु जब राहुल सांकृत्यायन का नाम लीजिए तो वे बड़े उत्सुकता से पूछने लगते हैं कि कहाँ हैं आजकल। कई लोगों को यह पता नहीं है कि वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। इसका कारण एक और भी था कि राहुलजी की ससुराल लेनिनग्राद में थी। इस सन्दर्भ में मैं जिस संस्कृति की चर्चा कर रहा था उसका संबंध राहुलजी की शादी से भी था। लोला नामक जिस रूसी महिला से उनकी शादी हुई थी, लेनिनग्राद जाने पर पता चला कि उनका असली नाम 'ईवाना लोला कोजिरोवस्काया' था। लोला संक्षेप में है। राहुलजी ने भी अपनी पुस्तकों में लोला ही लिखा। लोला कई भाषाएँ जानती थीं खासकर बुद्धिष्ट दुनिया की भाषाएँ। वे संस्कृत भी थोड़ा-बहुत जानती थीं। वे मंगोलियन, फ्रेंच तथा बुर्यात भाषाएँ भी जानती थी। राहुलजी का एक अज्ञात पहलू यह भी है कि वे रूस की बौद्ध संस्कृति को अच्छी तरह समझने के उद्देश्य से ही संभवत: एक रूसी महिला के इतना करीब आए। क्योंकि लोला बौद्ध संस्कृति को समझती थीं। मैं राहुलजी के रूसी बेटे 'इगोर राहुलोविच सांकृत्यायन' से सेन्टपीटर्सवर्ग में मिला। उनका घर फिनलैण्ड की खाड़ी के पास स्थित है। उनके पास मुझे वेलेरी रूदोई के साथ काम करनेवाली प्रो. तात्याना आर्माकोवा ले गई थीं। इगोर ने रूसी भाषा में अपना

अप्रकाशित संस्मरण लिखा है, उसे मुझे दिखाया। उन्होंने राहुलजी के लोला के नाम कुछ पत्र भी दिखाया और लोला के पत्र राहुलजी के नाम भी। सबसे महत्वपूर्ण पत्र थे राहुलजी का श्चेर्वात्स्की के नाम। जब उनको यह पता चला कि मैं राहुलजी के गाँव के पास का हूँ तो वे गद्गद हो गए। फिर वे मुझे बताना शुरू किए कि वे भारत 1995-96 में आए थे और राहुलजी के गाँव आजमगढ़ स्थित कनैला भी गए थे।

इगोर के संस्मरण में राहुलजी के बौद्ध संस्कृति के सन्दर्भ में कई बातें शामिल थीं। वे हमेशा राहुलजी को 'फादर', 'फादर' कह कर सम्बोधित करते थे। वे इस बात पर अफसोस कर रहे थे कि वे अपने फादर की जो मातृभाषा है, उसे नहीं बोल सकते। वे कहने लगे कि फादर यहाँ पर 'बुद्धिज्म' पर काम करना चाहते थे किन्तु उनको सोवियत सरकार ने इजाजत नहीं दी, क्योंकि वे मध्य एशिया तथा साइबेरिया जाना चाहते थे। बाद में मेरी माँ ने ऐसी सामग्री उपलब्ध कराया जो शुद्ध 'बुद्धिज्म' पर तो नहीं थी किन्तु मध्य एशिया के सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण थी। मध्य एशिया मुस्लिम क्षेत्र है। जाहिर है कि स्टालिन का जमाना था। बहुत सारी पाबंदियाँ थीं, उसके कारण भी थे, उस सन्दर्भ में मैं नहीं जाना चाहता। वे कहने लगे कि पिताजी ने तो बौद्ध संस्कृति से संबंधित सामग्री माँगा था, किन्तु वह उपलब्ध नहीं थी। क्योंकि उस समय पहले से ही बौद्ध विरोधी अभियान 1929 से 1938 तक रूस में चल चुका था। अनेक बौद्ध मठ गिरा दिए गए थे। किताबें तथा पाण्डुलिपियाँ आदि किसी विदेशी के लिए उपलब्ध नहीं थीं। सिर्फ शोधकार्य के लिए वहीं के विद्वान उसको देख सकते थे। इस बन्धन के कारण उनको बौद्ध सामग्री नहीं मिली। लेकिन छिट-पुट जो इतिहास था मध्य एशिया का उस पर उन्होंने रूसी भाषा में बहुत सारी सामग्री दिलाया। ये सारी बातें उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है। उस दिन उनके घर पर मैंने दस घण्टे बिताया और यह जानकारी मिली कि उसी सामग्री के आधार पर राहुलजी ने 'मध्य एशिया का इतिहास' लिखा। बौद्ध संस्कृति पर वे जो लिखना चाहते थे, उसकी खोज करना चाहते थे तथा वहाँ जाना भी चाहते थे, उन्हें वीजा नहीं मिला।

रूस में बुद्धिज्म किस तरह से पहुँचा वे इस रास्ते को अफगानिस्तान, खोतान, कुचा, बख्तिया ये जो क्षेत्र बामियान घाटी से होकर आगे जाती है, की वे तलाश कर रहे थे। लेकिन वो सामग्री नहीं मिली तो उन्होंने सीधे-सीधे दो वाल्यूम में 'मध्य एशिया का इतिहास' लिख दिया। इस तरह से 'मध्य एशिया का इतिहास' आया, जिसको वे लिखना नहीं चाहते थे, लिखना चाहते थे बौद्ध संस्कृति पर। इसका एक बड़ा रोचक पक्ष यह है कि राहुल सांकृत्यायन जैसा विद्वान मध्य एशिया की बौद्ध संस्कृति पर अगर लिखता, तो कितनी बड़ी जानकारी मिलती। लेकिन एक-एक वाक्य कहीं-कहीं बीच में आप लोगों ने 'मध्य एशिया का इतिहास' पढ़ा होगा तो देखा होगा कि उससे बौद्ध संस्कृति के बारे में सूत्रवत जानकारी मिलती है। वे अपनी एक अन्य पुस्तक 'सोवियत मध्य एशिया' में जिक्र करते हैं किरगिजिया का। किरगिजिया में उइगुर लोग होते थे। उइगुर लोग बुद्धिष्ट होते थे। मंगोल पहले आए उनको बहुत मारे-पीटे थे। लेकिन बाद में जब भारत आने पर उनको पढ़ने-लिखने के लिए, फाइल रखने की और तमाम रिकार्ड रखने की जरूरत पड़ी तो उनको कहीं पर कोई पढ़ा-लिखा आदमी

इगोर के संस्मरण के अनुसार सन् 1950 में सोवियत शासन ने लोला को आदेश दिया कि वे अपने विदेशी पति राहुल सांकृत्यायन को तलाक दे दें, अन्यथा उनकी नौकरी खतरे में पड़ जाएगी। लोला ने नौकरी से बर्खास्त होना स्वीकार किया और राहुल को तलाक नहीं दिया। फलतः मार्च 1950 में उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। मैं उस रूसी महिला के राहुल के प्रति किए गए समर्पण एवं त्याग से अचम्भित रह गया।

नहीं मिला था। उनको तब याद आया कि किरगिजिया के बौद्ध भिक्षु पढ़े-लिखे हैं। उनको मंगोल 'वक्षु' कहा करते थे, उच्चारण गलत होने के नाते। आज किरगिजिया एक मुस्लिम देश है। वहाँ से भिक्षुओं को मंगोल शासक अपने साथ पढ़ने-लिखने तथा रिकार्ड रखने के लिए लाते थे क्योंकि सिर्फ भिक्षु ही ऐसा कर सकते थे, दूसरे अनपढ़ होते थे। लेकिन जब भिक्षु मध्य एशिया से होकर कश्मीर में पहुँचे तो वही भिक्षु या 'वक्षु' लोग यहाँ 'बक्शी' हो गए। कायस्थ समुदाय में बक्शी लोग आते हैं। यह समुदाय आज भी लिखाई-पढ़ाई के लिये जाना जाता है।

इस तरह राहुलजी ने जहाँ तहाँ किसी छोटे-मोटे तथ्य का भी उल्लेख कर दिया है, उनसे बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ उजागर हो जाती हैं। यदि उस समय सोवियत सरकार राहुलजी को बौद्ध संस्कृति के अध्ययन के लिये मध्य एशिया या साइबेरिया जाने के लिये आज्ञा प्रदान कर दी होती तो सम्भवत: वे उसके बहुत बड़े इतिहास को दुनिया के सामने ला सकते थे, किन्तु ऐसा नहीं हो पाया। वे मध्य एशिया के जिन क्षेत्रों में जाना चाहते थे वे सभी सदियों से बौद्ध संस्कृति के गढ़ रहे हैं। इनमें तुर्फान, खोतान तथा कुचा आदि अत्यंत महत्वपूर्ण बौद्ध स्थल थे। खोतान में तो सन् 499 ई. में प्रख्यात् चीनी बौद्ध पर्यटक फाह्यान भारत पहुँचने से पहले वहाँ के एक बौद्ध मठ में रुके थे। इस बौद्ध मठ का नाम था गोमती। वहाँ वह एक महीने ठहरे तथा वहाँ का विवरण लिखा, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि वहाँ का स्थानीय राजा बरसात के दिनों में एक रथ यात्रा निकालता था। रथ पर बुद्ध की मूर्ति रखकर राजा स्वयं घोड़े की तरह उसे खींचता था। इस रथ यात्रा में हजारों लोग शामिल होते थे। आज हम यदि भारत का जिक्र करें तो पुरी की जगन्नाथ रथ यात्रा का दृश्य उभर आता है, किन्तु अनेक इतिहासकारों का कहना है कि पुरी का जगन्नाथ मन्दिर एक बौद्ध मठ था और 11वीं, 12वीं शताब्दी के बाद भारत में बौद्ध विरोधी अभियान के दौरान उस मठ को जगन्नाथ मन्दिर में बदल दिया गया। फाह्यान के विवरण से भी ऐसा लगता है कि रथयात्रा एक बौद्ध सांस्कृतिक परम्परा थी जिसे नष्ट करके अन्य देवी-देवताओं की परम्परा में बदल दिया गया। भारत में जहाँ भी बौद्ध संस्कृति को विनष्ट किया गया वहाँ बुद्ध की मूर्तियों को पहले तोड़ा गया, बाद में बची-खुची मूर्तियों को काले रंग से रंग दिया गया और उन्हें विभिन्न देवी-देवताओं का नाम दे दिया गया। ऐसी विकृत की गयी मूर्तियों को कहीं काली माई तो कहीं डीह बाबा या भैरव बाबा आदि के नाम से जाना गया। इसका एक अद्भुत उदाहरण करीब तीन साल पहले भारतीय पुरातत्व विभाग ने बोधगया के पास कुछ गाँवों में स्थित ऐसे काली-मन्दिरों को ढूँढ़ निकाला, जिनमें काली माई की मूर्तियों की पूजा होती थी, जिन पर सिन्दूर व टीका आदि लगाकर पूजा-पाठ किया जाता था। इन मूर्तियों का आकार कुछ विचित्र-सा दिखाई देता था। किन्तु जब पुरातत्व विभाग के विशेषज्ञों ने इन मूर्तियों को धोने के बाद उन पर पोती गयी कालिख तथा सिन्दूर आदि को साफ किया तो पता चला कि ये मूर्तियाँ गौतम बुद्ध की थीं जिन्हें बौद्ध-विरोधी अभियान के दौरान काली माई का रूप दे दिया गया था।

इस पृष्ठभूमि में सोवियत सरकार द्वारा राहुल सांकृत्यायन को मध्य एशिया तथा साइबेरिया जाने की इजाजत न देना बौद्ध संस्कृति की खोज के लिये एक अपूरणीय क्षति सिद्ध हुई। जाहिर है वह जमाना स्टालिन का था और अनेक पाबन्दियाँ लगी थी। साइबेरिया में दुनिया की सबसे प्रसिद्ध बैकाल झील है जिसके आर-पार बसने वाले क्षेत्र- बुर्यातिया, कल्माकिया और तुवा आदि पिछले चार सौ सालों से बौद्ध क्षेत्र हैं। हैरत होती है कि 60 डिग्री माइनस तापमान तक बर्फ से ढके इन क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं को परास्त कर बौद्ध धर्म वहाँ विकसित हुआ। जरा आप सोचिए कि जहाँ आदमी का पहुँचना मुश्किल है, वहाँ बौद्ध विचारधारा कैसे पहुँची, वह भी चार सौ साल पहले? महापंडित राहुल इन क्षेत्रों को न सिर्फ देखना चाहते थे, बल्कि उनका गहन अध्ययन भी करना चाहते थे। वे तत्कालीन सोवियत सरकार द्वारा उत्पन्न की गयी परिस्थितियों की मजबूरी के कारण जिस बौद्ध संस्कृति को सामने नहीं ला सके, मैं संक्षेप में उस पर प्रकाश डालने की कोशिश करूँगा।

इस संदर्भ में एक रोचक तथ्य यह है कि राहुल जी

के कारण उनके रूसी परिवार को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनके रूसी बेटे इगोर राहुलोविच ने मुझे अपना रूसी भाषा में हस्तलिखित संस्मरण दिखाया जिससे मुझे पता चला कि राहुल जी के रूस से भारत लौट आने के पश्चात उनकी पत्नी लोला को अत्यंत मुश्किलों को सामना करना पड़ा। लोला श्चेर्वात्स्की जैसे बौद्ध विद्वान की शोध सहायिका हुआ करती थीं। यद्यपि श्चेर्वात्स्की की सन् 1942 में ही मृत्यु हो चुकी थी किन्तु सेन्टपीटर्सवर्ग के उनके संस्थान में वे कार्यरत थीं। सन् 1941 में जब लेनिनग्राद को हिटलर ने घेर रखा था उस समय वहाँ से अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों को निकालकर स्टालिन ने सुरक्षा की दृष्टि से रूस के अन्य सुरक्षित क्षेत्रों में रहने का इन्तजाम किया था। इन्हीं महत्वपूर्ण व्यक्तियों में श्चेर्वात्स्की भी एक थे, जिन्हें कजाकिस्तान के वरोव्या नामक हिल स्टेशन पर रखा गया था। यहीं सन् 1942 में उनकी मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि उन्हें टी. बी. हो गयी थी। इस संदर्भ में कुछ साल पहले बाल्टिक देश इस्तोनिया के एक बौद्ध विद्वान रिनाल्टमल से मेरी मुलाकात हुई, उन्होंने मुझे बताया कि श्चेर्वात्स्की की मृत्यु अस्वाभाविक थी। उनका यह कहना था कि सोवियत काल में अनगिनत विद्वानों की तरह श्चेर्वात्स्की की मृत्यु स्टालिन के षड्यंत्रों के कारण हुई थी। चाहे जो भी सच्चाई हो, किन्तु उनकी शिष्या लोला को स्टालिन के शासन का प्रत्यक्ष शिकार होना पड़ा। इगोर के संस्मरण के अनुसार सन् 1950 में सोवियत शासन ने लोला को आदेश दिया कि वे अपने विदेशी पति राहुल सांकृत्यायन को तलाक दे दें, अन्यथा उनकी नौकरी खतरे में पड़ जाएगी। लोला ने नौकरी से बर्खास्त होना स्वीकार किया और राहुल को तलाक नहीं दिया। फलत: मार्च 1950 में उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। मैं उस रूसी महिला के राहुल के प्रति किए गए समर्पण एवं त्याग से अचम्भित रह गया। यद्यपि राहुलजी का लोला से सारे सम्बन्ध लगभग समाप्त हो चुके थे, फिर भी लोला का भावनात्मक सम्बन्ध उन्हें स्वयं कठिनाई में डाल दिया। उस समय ईगोर 12 साल के थे। बिना नौकरी के इगोर का पालन-पोषण तथा स्वयं की देखभाल करना लोला के लिए बहुत कष्टकारी साबित हुआ। ईगोर के संस्मरण से ही पता चला कि लोला ने कई बार भारत आने के लिए सोवियत सरकार से वीजा के लिये प्रार्थना-पत्र दिया था, किन्तु उन्हें भारत आने की आज्ञा नहीं मिली। उनके संस्मरण से यह भी पता चला कि जब राहुलजी को स्मृतिलोप होने के कारण सन् 1962 में मास्को के 'सेन्ट्रल हास्पीटल' में भर्ती किया गया था, उस समय उनके साथ उनकी भारतीय पत्नी कमला भी मौजूद थीं। ईगोर ने बताया कि वे स्वयं मास्को में राहुलजी के साथ सिर्फ सात दिन थे, किन्तु राहुलजी किसी को पहचान नहीं पाते

रूस में बौद्ध धर्म के इतिहास की शुरूआत अत्यंत रोचक ढंग से हुई। लगभग 400 साल पहले मंगोल तथा तिब्बती बौद्ध भिक्षु साइबेरिया में बौद्ध धर्म प्रचार के लिए आए। वे शुरू में घोड़ों तथा ऊटों पर तम्बू लाद कर साइबेरिया के इलाकों में घूमा करते थे। जहाँ भी गाँव देखते वहाँ तम्बू लगा देते थे। उसमें बुद्ध की प्रतिमा खड़ी करके पूजा पाठ शुरू कर देते थे। इस तरह साइबेरियाई जनजातियाँ, जिनमें बुर्यात्, कल्माक, तुंगुत, तूवी आदि प्रमुख थीं, सबसे पहले बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आईं।

थे। अस्पताल में लोला राहुलजी से सिर्फ तीन बार एक-एक घन्टे के लिए मिल सकी। ईगोर के संस्मरण से ज्ञात होता है कि कमला वहाँ एक रुकावट सिद्ध हुयीं। ईगोर ने यह भी कहा कि जब वे 1995-96 में राहुलजी के जन्मशती तदोपरान्त भारत आए थे तो, वे सेन्टपीटर्सवर्ग स्थित लोला की मजार से कुछ मिट्टी अपने साथ लाए थे। इस मिट्टी को उन्होंने दार्जीलिंग स्थित राहुल की मजार में मिला दिया और राहुल की मजार से कुछ मिट्टी वे वापस लौटकर लोला की मजार में मिला दिए। ईगोर

का यह कार्य लोला के राहुल जी के प्रति असीम लगाव को दर्शाता है। लोला का जन्म एक अगस्त, 1899 को तथा मृत्यु 17 अक्तूबर, 1979 को हुई। ईगोर ने मुझे यह भी बताया, "मेरे पिता राहुलजी बौद्ध दर्शन तथा संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान थे। यह धर्म सहनशीलता एवं बराबरी का उपदेश देता है, किन्तु मैं स्वयं बौद्ध नहीं बन सका। मैं अब भी आर्थोडाक्स क्रिश्चियन हूँ और प्रतिदिन इस क्रिश्चियानिटी के कुछ मूल उपदेशों को नियमित रूप से दोहराता हूँ।" इसके बाद ईगोर ने मुझे एक पृष्ठ का एक दस्तावेज दिखाया जो एक तरह का सर्टीफिकेट था, जिसका शीर्षक था, 'खराक्तेरिस्तिका'। इसके नीचे दो अधिकारियों के हस्ताक्षर थे, जिसमें एक का नाम था इगोगीव तथा दूसरे का एफीमोव। दिनाँक 14 मार्च, 1950 के इस एक पैराग्राफ वाले सर्टीफिकेट में लोला की विद्वता की तारीफ की गयी थी, खासकर उनके विभिन्न भाषओं के ज्ञान के बारे में, किन्तु अन्त में यह लिखा हुआ था कि चूंकि उनकी शादी एक विदेशी से हुई थी इसलिये भविष्य में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह सर्टीफिकेट लोला को नौकरी से बर्खास्त किए जाने के बाद दिया गया था। उन्हें नौकरी से निकाले जाने का एक प्रमुख कारण यह था कि राहुल जी जो कुछ लिखना चाहते थे उससे जुड़ी हुई सामग्री लोला लाकर उन्हें देती थीं। इसकी जानकारी अधिकारियों को थी। ऐसा करना उस समय के बन्द सोवियत समाज में बहुत बुरा माना जाता था। इस तरह की गतिविधियों को सोवियत संघ के लिए एक खतरे के रूप में समझा जाता था, जिसका परिणाम लोला को भुगतना पड़ा। इस तरह राहुल तथा लोला के अन्जान पहलू पर मुझे अनेक अमूल्य जानकारियाँ मिलीं। बाद में ईगोर मुझे तथा तात्याना आर्माकोवा को लंच कराने के बाद करीब आधा किलोमीटर दूरी पर स्थित भूमिगत मेट्रो स्टेशन एलेक्त्रोसिला पर छोड़ने आए। रास्ते में उन्होंने राहुल जी के बारे में एक रोचक घटना सुनायी। ईगोर ने कहा कि सन 1954 में राजकपूर की बनी 'आवारा' फिल्म जो रूसी भाषा में डब की गई थी, को सेंटपीटर्सवर्ग के एक सिनेमा हाल में उन्होंने (ईगोर) देखा था। आवारा को रूसी भाषा में 'ब्राज्यागा' कहते हैं। इस फिल्म को देखने के बाद ईगोर ने कहा कि उन्होंने राहुल सांकृत्यायन को भारत में एक चिट्ठी भेजा और यह पूछा कि, "पिताजी। क्या मेरा जीवन 'ब्राज्यागा' की तरह है?" किन्तु इस पत्र का जो ईगोर को जवाब आया उसे याद कर वे आज भी दुखित जान पड़े, क्योंकि राहुल जी ने जवाब में लिखा था कि उनकी फिल्मों में कोई रुचि नहीं है इसलिए 'आवारा' के बारे में कुछ भी नहीं कह सकते।

हकीकत यह है कि सोवयत संघ में राहुल सांकृत्यायन बौद्ध संस्कृति की खोज में स्वयं एक 'आवारा' की तरह घूमते रहे किन्तु उन्हें मिला कुछ नहीं। अब मैं राहुल जी के उस असफल प्रयास के आगे इस विषय से जुड़े हुए इतिहास पर प्रकाश डालना चाहता हूँ।

मैं सोवियत संघ के विघटन के दस वर्षों के बाद रूस गया था, जिसके कारण वर्षों तक छिपाए गए तथ्यों को जानने का मौका मिला, क्योंकि वहाँ का समाज अब पूरी तरह से खुल चुका हैं। दुर्गम साइबेरियाई क्षेत्र, जिसमें 1929 से 1938 के बीच जिस बौद्ध संस्कृति को दबा दिया गया था, अब वह फिर से सजीव हो चुकी है। उस समय साइबेरिया के करीब 47 बौद्ध मठों को ध्वस्त कर दिया गया था। आज उन्हीं ध्वस्त की गयी नीवों पर करीब 30 बौद्ध मठ फिर से निर्मित किये जा चुके हैं। सन् 1938 से पहले साइबेरिया में लगभग पन्द्रह हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे। बाद के समय में इनमें से कोई नहीं बचा, किन्तु आज पूरे रूस में फिर से सैकड़ों लोग बौद्ध भिक्षु बन रहे हैं, तथा वहाँ 10 लाख से अधिक लोगों की जीवन प्रणाली बौद्ध दर्शन पर आधारित है। इस समय रूस तथा पूर्व सोवियत गणराज्यों यूक्रेन, बेलारूस, इस्तोनिया, लाटविया, लिथुआनिया, अजरबाईजान, उजबेकिस्तान आदि में करीब तीन सौ बौद्ध संस्थाएँ काम कर रही हैं। चूंकि रूस में तिब्बती बौद्ध धर्म की परम्परा है, इसलिए वहाँ सैकड़ों की संख्या में तिब्बती भिक्षु तथा विद्वान बौद्ध धर्म को पुनर्जागृत करने का अभियान चला रहे हैं। इस समय रूस से अनेक बौद्ध उपासक भारत में दलाई लामा के निवास धर्मशाला तथा अन्य बौद्ध संस्थानों में शिक्षा

प्राप्त करने के दृष्टिकोण से आते-जाते रहते हैं। रूस में बौद्ध धर्म के इतिहास की शुरूआत अत्यंत रोचक ढंग से हुई। लगभग 400 साल पहले मंगोल तथा तिब्बती बौद्ध भिक्षु साइबेरिया में बौद्ध धर्म प्रचार के लिए आए। वे शुरू में घोड़ों तथा ऊटों पर तम्बू लाद कर साइबेरिया के इलाकों में घूमा करते थे। जहाँ भी गाँव देखते वहाँ तम्बू लगा देते थे। उसमें बुद्ध की प्रतिमा खड़ी करके पूजा पाठ शुरू कर देते थे। इस तरह साइबेरियाई जनजातियाँ, जिनमें बुर्यात्, कल्माक, तुंगुत, तूवी आदि प्रमुख थीं, सबसे पहले बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आईं। ये जनजातियाँ इससे पहले 'समनी धर्म' को मानने वाली होती थीं अर्थात भूत-बैतालों की पूजा करने वाले लोग। इस तरह की तम्बू प्रणाली को 'दुगान' कहा जाता था अर्थात् अस्थायी बौद्ध मठ। यह 'दुगान' एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर स्थापित किया जाता था, जहाँ आम लोगों को बौद्ध दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। यह 'दुगान' प्रणाली अक्सर साइबेरिया की प्रमुख नदियों-ओना, ऊदा, सेलिंगा तथा अंगारा आदि के किनारे स्थापित की जाती थी। बाद में इन्हीं स्थानों पर जब स्थाई बौद्ध मठ बना दिए गए तो उनका नाम 'दात्सान' पड़ा। इन दात्सानों में बौद्ध स्कूल भी चलाए जाते थे, जिनमें पूर्ण रूप से बौद्ध दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। कालान्तर में ऐसे मठों में हजारों की संख्या में तिब्बत तथा मंगोलिया से अमूल्य प्राचीन पाण्डुलिपियों का अम्बार लग गया। ऐसी पाण्डुलिपियों को 'सिलोग्राफ' कहा जाता था। 'सिलोग्राफ' करीब तीन फीट लम्बे और 9 इंच चौड़े हाथ के बने मोटे कागजों पर तैयार किया जाता था, इनके तिब्बती अक्षरों को पहले लकड़ी में खोदा जाता था। इसके बाद उन्हें साँचा की तरह इस्तेमाल करके पाण्डुलिपियाँ लिखी जाती थीं। यह एक अत्यंत कठिन प्रक्रिया होती थी, जिसमें एक पाण्डुलिपि को तैयार करने में महीनों लग जाता था। इतने परिश्रम से लिखी गई हजारों बौद्ध पाण्डुलिपियाँ स्टालिन काल के धर्म विरोधी अभियान में नष्ट हो गई, फिर भी उनमें से 60,000 (साठ हजार) पाण्डुलिपियाँ सेन्टपीटर्सवर्ग की हर्मीताज पैलेस की कड़ी में स्थित ब्लादिमीर पैलेस में रखी हुई हैं। सेन्टपीटर्सवर्ग के प्रसिद्ध बौद्ध नेता ऐलेक्जैण्डर तिरन्तिएव से पता चला कि बौद्ध विरोधी अभियान के दौरान साइबेरिया के मठों से इन हजारों पाण्डुलिपियों समेत अनगिनत छोटी-बड़ी बौद्ध मूर्तियों को निकालकर कलेक्टिव फार्मों (सामूहिक कृषि के खेत) पर फेंक दिया गया था। मूर्तियों को तो लोगों ने लूट लिया, किन्तु पाण्डुलिपियों को जला दिया गया।

इस तरह बौद्ध धर्म को रूस में अनेक मोड़ों से गुजरना पड़ा। वहाँ बौद्ध धर्म को सर्वप्रथम 1741 में रूस की जरीना एलिजावेथ पेत्रोव्ना ने सरकारी मान्यता प्रदान की थी। बाद में रूस के कट्टर ईसाई सन्तों के दबाव के कारण बौद्धधर्म के प्रसार पर अनेक पाबन्दियाँ लगा दी गई थी, फिर भी इसका विकास जारी रहा, जैसा कि 16वीं-17वीं शताब्दी में ही पूरे साइबेरिया में बौद्ध धर्म फैल चुका था, जिससे ईसाई समुदाय काफी चिन्तित हो गया था। इस कड़ी में सबसे रोचक तथ्य यह है कि सन् 1817 में 'लंदन मिशनरी सोसाइटी' ने अपने इसाई मिशनरियों के माध्यम से पूरे साइबेरिया को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का अभियान चलाया। यह प्रयास वर्षों तक चलता रहा किन्तु थककर वे वापस चले गए।

मठ में प्रवेश करते ही वहाँ जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर मैं चकित रह गया। कोई 20-25 नर-नारी जिनमें कुछ रूसी बौद्ध भिक्षु भी शामिल थे, वे मठ में स्थापित विशाल सुनहरी बौद्ध मूर्ति के समक्ष बैठकर तिब्बती बौद्ध धर्म के 'निग्मापा सम्प्रदाय' में प्रचालित धार्मिक पद्धति के अनुसार बुद्ध वन्दना में व्यस्त थे। हम उनके बीच चुपचाप बैठ गए। हमारी प्रविष्टि से वहाँ किसी का ध्यान जरा भी भंग नहीं हुआ। मुझे ऐसा लगा कि किसी ने कुछ देखा ही नहीं। वे सभी तिब्बती बौद्ध सूत्रों को जोर-जोर से उच्चारित करते हुए बुद्ध भक्ति में लीन थे।

आज जब हम रूस की बौद्ध संस्कृति पर निगाह

डालते हैं तो एक क्रान्तिकारी परिवर्तन नजर आता है। इस समय मास्को तथा सेन्टपीटर्सवर्ग जैसे ऐतिहासिक नगरों में पच्चीस 'बौद्ध स्ट्डी सर्किल' चलाए जा रहे हैं, जिनमें नये सिरे से बौद्ध शिक्षाएँ दी जा रही हैं। शीघ्र ही मास्को में पहला बौद्ध मठ तैयार होने जा रहा है जिसके लिए मास्को के मेयर यूरी लुझ्कोव ने इस्पर्तिबनाया नामक क्षेत्र में सरकारी जमीन आवन्टित कर दिया है। वैसे सेन्टपीटर्सवर्ग में यूरोपीय धरती का पहला बौद्ध मठ 1913 में 'स्तराया देरेव्न्या' नामक स्थान पर निर्मित किया गया था। स्तराया देरेव्न्या का अर्थ 'पुराना गाँव' होता है, जिसे मैं 'बूढ़न पुर' कहता हूँ। इस बौद्ध मठ को रूस के महान बौद्ध धर्मगुरु आगावान दोर्जियेव ने बनवाया था, जिसकी आर्किटेक्ट कमेटी में रोरिख जैसे महान पेन्टर तथा श्चेर्वात्स्की जैसे बौद्ध विद्वान शामिल थे। इस कमेटी में जार खानदान का एक राजकुमार भी था। इस बौद्ध मठ का उद्घाटन 1913 में जार के रोमानोव वंश के तीन सौवें साल के अवसर पर किया गया। बाद में 1939 तक हजारों बौद्धों की गिरफ्तारी के बाद इस मठ को स्टालिन ने बन्द करवा दिया। सन 1938 में आगावान दोर्जियेव की जेल में ही मृत्यु हो गयी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 'रेड आर्मी' ने इस मठ पर कब्जा कर लिया था तथा अन्दर रखी विशाल बुद्ध मूर्ति जिसे चीन से लाया गया था, को विखण्डित कर दिया गया था। तिरन्तिएव के अनुसार इस मठ में ग्रेनेड भी तैयार किया जाता था। विश्वयुद्ध के बाद इस मठ में एक कीट प्रयोगशाला स्थापित कर दी गयी, जिसमें वैज्ञानिक परीक्षण के लिये विभिन्न जीवों का पोस्टमार्टम किया जाता था। इसकी पराकाष्ठा 1967 में उस समय देखने को मिली, जब इस ऐतिहासिक मठ में एक अफ्रीकी हाथी का पोस्टमार्टम किया गया। इस तरह रूस में बौद्ध धर्म को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस समय सबसे बड़ा हर्ष का विषय यह है कि सोवियत पतन के बाद रूसी सरकार ने बौद्ध मठ को फिर से वहाँ के बौद्धों को समर्पित कर दिया है। इसे देखने के लिए महापंडित राहुल सांकृत्यायन 1946 में गये थे, किन्तु इसके बारे में उनका लिखा हुआ कुछ भी नहीं मिलता है। उनके बाद सम्भवत: मैं पहला भारतीय बौद्ध यात्री था, जो 'स्तराया देरेव्न्या' के मठ में अक्टूबर 2000 में गया था।

स्तराया देरेव्न्या के मठ में मुझे सेन्टपीटर्सवर्ग की हिस्ट्री म्युजियम में काम करने वाली एक युवा बौद्ध महिला मार्गेरीता तिरेन्तिएवा ले गई। वहाँ जाने के लिए मार्गेरीता ने मुझे भूमिगत मेट्रो स्टेशन 'चोर्नाया रीझ्का' (काला नाला) पर इन्तजार करने को कहा था। वहाँ मैं करीब 6 बजे पहुँचा और उनका इन्तजार करने लगा। इसी बीच मैंने देखा कि एक चपटी नाक वाला बौद्ध भिक्षु पीला चीवर पहने चला आ रहा था। मैं उसके परिधान से समझ गया कि यह भिक्षु है। कौतूहलवश मैं उसके पास चला गया। उसने मुझे देखते ही रूसी भाषा में बोला 'इन्दिस्की' यानि भारतीय और अपने को 'किताई' यानि चीनी सम्बोधित किया। मैं दंग रह गया। उनका नाम था तुंग सी चांग। शीघ्र ही पता चला कि वे आठ वर्ष पूर्व यानि 1992 में चीन से यूक्रेन एक मजदूर के रूप में आए थे, किन्तु वहाँ उनकी मुलाकात यूक्रेन में रह रहे महान जापानी बौद्ध भिक्षु भन्ते तरासावा से हो गई और उनके प्रभाव में वे भिक्षु बन गए। उन्होंने बताया कि वे एक माह से सेन्टपीटर्सवर्ग में रह रहे थे। उनके कन्धे पर भारतीय ढोल वाद्य दफला की तरह बौद्ध परम्परा में शान्ति के लिए बजाया जाने वाला चीनी वाद्य 'थाइ कू' लटक रहा था। हम दोनों चोर्नाया रीझ्का के निकास पर खड़े थे। इस बीच तुंग सी चांग थाइ कू को एक लकड़ी से बजाने लगे। लोग हम दोनों की तरफ आकर्षित होने लगे। सबसे पहले एक रूसी एक हाथ में आधी भरी वोदका की बोतल लिए नशे में धुत होकर हमारे पास लड़खड़ाते हुए खड़ा हो गया तथा हमारे साथ आग्रह करके फोटो खिचवाया। इसी बीच मार्गेरीता वहाँ पहुँच गई। पता चला कि वह चीनी भिक्षु मार्गेरीता का ही इन्तजार कर रहा था। यह एक विचित्र संयोग था। मार्गेरीता से पता चला कि तुंग सी चांग विगत एक महीने से विश्व शान्ति के लिए सेन्टपीटर्सवर्ग की गलियों में थाइ कू बजाते भटकते रहते हैं। यह था बौद्ध संस्कृति का एक अदभुत नमूना। तुंग सी चांग के नाम में जो लयात्मक स्वर था, उससे मुझे अनुभूति हुई कि यह नाम मेरे ही नाम तुलसी राम का

चीनी में पर्याय था। मार्गेरीता हम दोनों को अपने साथ स्तराया देरेव्न्या नामक स्थान पर स्थित उस बौद्ध मठ में ले गयीं। इस बौद्ध मठ के प्रांगण से गुजरने वाली सड़क का नाम का 'प्रीमोस्र्की प्रास्पेक्त'' अर्थात प्रीमोस्र्की रोड। बौद्ध मठ के ठीक सामने एक नदी थी। उस नदी का नाम था बलसाया नेव्का अर्थात बड़ी नेव्का नदी। यह नदी सेन्टपीटर्सवर्ग की विश्वविख्यात नीवा नदी की एक उपशाखा थी। जिस समय हम उस बौद्ध मठ में पहुँचे उस नदी में एक आदमी कटिया डालकर मछली मार रहा था। मुझे यकायक प्रतीत हुआ कि जीव हत्या बौद्ध सिद्धान्तों के खिलाफ है, यद्यपि वह मछुआरा बौद्ध नहीं था। मठ में प्रवेश करते ही वहाँ जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर मैं चकित रह गया। कोई 20-25 नर-नारी जिनमें कुछ रूसी बौद्ध भिक्षु भी शामिल थे, वे मठ में स्थापित विशाल सुनहरी बौद्ध मूर्ति के समक्ष बैठकर तिब्बती बौद्ध धर्म के 'निंगमापा सम्प्रदाय' में प्रचालित धार्मिक पद्धति के अनुसार बुद्ध वन्दना में व्यस्त थे। हम उनके बीच चुपचाप बैठ गए। हमारी प्रविष्टि से वहाँ किसी का ध्यान जरा भी भंग नहीं हुआ। मुझे ऐसा लगा कि किसी ने कुछ देखा ही नहीं। वे सभी तिब्बती बौद्ध सूत्रों को जोर-जोर से उच्चारित करते हुए बुद्ध भक्ति में लीन थे। बीच-बीच मे एक उपासक घण्टी बजाता जा रहा था तथा एक अन्य नगाड़े की शक्ल में रखे एक वाद्य पर लकड़ी से प्रहार करता जा रहा था। मैं इन सूत्रों को समझने में पूर्णत: असफल था, किन्तु बीच-बीच में कुछ शब्द पाली तथा संस्कृत के स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहे थे। सबसे हैरत की बात यह थी कि ये सारे बौद्ध उपासक-उपासिकाएँ खाँटी रूसी थे और भिक्षुओं को छोड़ाकर अन्य सभी अति आधुनिक परिधान पहने हुए थे। नगाड़ा जैसे वाद्य से डमरू जैसी आवाज आ रही थी। मैं चुपचाप कुतूहल से यह सब देखता रहा। करीब आधे घण्टे के बाद यकायक उस वाद्य पर लकड़ी के जोरदार प्रहार से भारतीय दफले जैसी आवाज गूँज उठी। यह संकेत था उस दिन की बुद्ध वन्दना के समापन का। अचानक उस पूजा में शामिल लोगों ने मुझे घेर लिया। बिना नाम-ग्राम पूछे वे ऐसे घुलमिल गये कि मानो मुझे वर्षों से जानते हों। उन सबकी जबान पर एक ही वाक्य थिरक रहा था कि मैं बुद्ध के देश से आया हूँ।

मार्गेरीता ने उन्हें पहले ही से सूचित कर दिया था कि मैं बौद्ध मठ में आनेवाला हूँ। शीघ्र ही मठ की दूसरी मंजिल पर एक सभा आयोजित की गयी और मुझे भारत में बौद्ध धर्म की स्थिति पर बोलने के लिए कहा गया। मैं करीब एक घंटे तक भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान, पतन तथा उसके पुनर्जागरण के बारे में बोलता रहा। मेरे अंग्रेजी भाषण को मार्गेरीता बड़ी स्पष्टता से रूसी भाषा में अनुवाद करती जा रही थी। उनका अनुवाद इतना त्वरित था कि मानो मैं सीधे रूसी में ही बोल रहा था। बड़ी तन्मयता से वे रूसी बुद्ध भक्त चुपचाप मुझे सुनते रहे। भाषण के समापन पर प्रश्नों की बौछार होने लगी।

वे सभी महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम जानते थे, क्योंकि सेन्टपीटर्सवर्ग में ही उनकी ससुराल जो थी। मार्गेरीता ने बताया कि राहुल को रूसी बौद्ध तिब्बत से लाई गई हजारों बौद्ध पाण्डुलिपियों के उद्धारक के रूप में जानते हैं। वे सभी पूछने लगे कि वे पाण्डुलिपियाँ अब कहाँ है? जब मैंने कहा कि वे पाण्डुलिपियाँ तथा विश्वविख्यात तिब्बती थंका पेंटिग पटना में सड़ रही हैं तो सभी दुखित हो उठे।

सबसे बड़ा कुतूहल पैदा करने वाला सवाल था बौद्ध धर्म का भारत से निकाला जाना तथा यहाँ का जातिवादी समाज। मेरे द्वारा वैदिक आर्य व्यवस्था के भंडाफोड़ से वे मंत्रमुग्ध हो गए। सेन्टपीटर्सवर्ग के एक प्रमुख अस्पताल में नर्स के रूप में काम करने वाली अन्ना दिमित्रिएवा नामक एक आकर्षक युवती ने भारतीय दलितों की स्थिति के बारे में जानने के लिए अनेक प्रश्न किए। डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखे गए भारतीय संविधान तथा उनके ही द्वारा बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित करने वाले ऐतिहासिक प्रयास के बारे में जानकर वहाँ दिमित्रिएवा समेत सभी

लोग स्तब्ध रह गए, क्योंकि उनमें से किसी ने भी न तो डॉ. अम्बेडकर का नाम सुना था और न उनके दलित होने की सच्चाई को। जब मैंने कहा कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में बौद्ध धर्म को पिरोया है, तो वे कुछ ज्यादा अचंभित हो गए और वे अधिक से अधिक जानकारी के लिए उत्सुक हो उठे। यह बताए जाने पर कि भारतीय राष्ट्रीय झण्डे पर बौद्ध धम्म चक्र तथा राष्ट्रीय चिह्न सम्राट अशोक का चतुर्मुखी शेर डॉ. अम्बेडकर द्वारा रचित संविधान के कारण है, तो उन्हें अत्यन्त हैरत हुई। वे सभी महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम जानते थे, क्योंकि सेन्टपीटर्सवर्ग में ही उनकी ससुराल जो थी। मार्गेरीता ने बताया कि राहुल को रूसी बौद्ध तिब्बत से लाई गई हजारों बौद्ध पाण्डुलिपियों के उद्धारक के रूप में जानते हैं। वे सभी पूछने लगे कि वे पाण्डुलिपियाँ अब कहाँ है? जब मैंने कहा कि वे पाण्डुलिपियाँ तथा विश्वविख्यात तिब्बती थंका पेंटिग पटना में सड़ रही हैं तो सभी दुखित हो उठे। किन्तु सन् 1956 में डॉ. अम्बेडकर द्वारा लाखों दलितों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार किए जाने के बाद उनकी प्रशंसा मे राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखे गए बृहद लेख के बारे में जानकर वे उनके बारे में बहुत कुछ जानने के लिए उत्सुक हो गए। जब मैंने कहा कि जिस अम्बेडकर द्वारा रचित संविधान के कारण सदियों से हिन्दू जाति व्यवस्था के शिकार दलितों की स्थिति में काफी सुधार हुआ, विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में, किन्तु उस संविधान को नष्ट करने के लिए वर्तमान हिन्दू सरकार ने एक आयोग बैठा दिया है, तो उनको अत्यन्त हैरानी हुई। हैरानी का सबसे बड़ा कारण यह था कि भारत प्रेमी रूसियों को संघ परिवार की समाजद्रोही नीतियों के बारे में कुछ भी पता नहीं है। अन्ना दिमित्रिएवा यह सब जानकर इस तरह परेशान हो गई कि मानो भारतीय संविधान को बदल देने से सबसे बड़ा नुकसान उन्हीं को होने वाला है। भारत के शोषितों के प्रति रूसी बौद्ध एकजुटता का यह एक अद्भुत नमूना था।

इस बीच रात के 9 बज चुके थे। सभी लोग बहुत कुछ जानने के लिए उत्सुक थे। समय को ध्यान में रखते हुए उस बौद्ध मठ में रहने वाली बौद्ध भिक्षु विक्तोरोवा विक्तोरोव्ना सुसोएवा मेरे पास आकर फोटो खीचने का आग्रह करने लगी। विक्तोरोवा हमारे यहाँ की भिक्षुड़ियों की तरह नहीं थी। उनकी उम्र मुश्किल से 25 वर्ष रही होगी। वे हरे रंग का ट्रैक सूट पहने हुई थी। वे सोवियत जमाने की आसमान में कई कलैया मार कर सीधे जमीन पर गिरने वाली ओलंपिक चैम्पियन एथलीटों जैसी लग रही थी। उनके सौन्दर्य को देखकर भिक्षुड़ी बनने की अवधारणा मेरे मस्तिष्क में नहीं समा पा रही थी। यकायक मुझे बुद्ध के संघ में श्रावस्ती में रहने वाली अत्यन्त सुन्दरी भिक्षुड़ी उत्पलवर्णा की याद आने लगी। क्षण भर के लिए मुझे लगा कि मानो ढ़ाई हजार वर्ष पुरानी उत्पलवर्णा का विक्तोरोवा के रूप में 'अवतार' हो गया हो। उन्होंने उस बौद्ध मठ के सन्दर्भ में मुझे कुछ सामग्री भेट किया। अनेकों फोटो उतरवाने के बाद वे सभी स्तराया देरेव्न्या के मेट्रो स्टेशन पर छोड़ने आए और मैं अपने निवास सेन्टपीटर्सवर्ग के उदेलनाया पहुँच गया। रास्ते में सिर्फ एक ही बात सोचकर गौरवान्वित होता रहा कि इस ऐतिहासिक बौद्ध मठ में जो अद्भुत सम्मान मुझे मिला, उससे महापण्डित राहुल सांकृत्यायन वंचित रह गए थे, क्योंकि जिस समय वे वहाँ आए थे, उसमें स्टालिनवादी ताले लगे हुए थे। इस सोच ने मुझे और भी दृढ़-प्रतिज्ञ बना दिया कि जिस महापंडित को रूसी बौद्ध संस्कृति को ढूँढ़ने में नाकाम बना दिया गया था, उनके उस छूटे कार्यों को मैं करूँगा, जिसका प्रतिफल एक पुस्तक के रूप में शीघ्र ही देखने को मिलेगा। ❑

(डॉ. तुलसीराम राहुलजी के पड़ोसी गाँव धर्मपुर, आजमगढ़ के निवासी हैं, उनका जन्म एक दलित परिवार में हुआ। हाई स्कूल की पढ़ाई के बाद घरवालों द्वारा पढ़ाई छुड़वाने के कारण राहुलजी की प्रेरणा से ज्ञान की तलाश में घर छोड़ा। कालान्तर में वे मार्क्सवादी तथा बौद्ध बने। तुलसीराम ने उच्च शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा जे.एन.यू. से प्राप्त की और राजनीति शास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो बार एम. ए. व पी.एच.डी किया। आपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से संबंधित अनेक पुस्तकें तथा बौद्ध दर्शन-साहित्य और राजनीति से संबंधित सैकड़ों लेख लिखे हैं। वर्तमान में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज में रूसी राजनीति के विशेषज्ञ व प्रोफेसर हैं।)

जननायक बिरसा मुंडा की पुण्यतिथि के परिप्रेक्ष्य में

बिरसा मुंडा के अन्तिम दिन

बिरसा मुंडा आज भारतवर्ष में आदिवासी लोगों के महानायक के रूप में उभर कर आए हैं। उनका जन्मदिन अधिकारिक तौर पर 15 नवम्बर, 1872 को माना जाता है। उलगुलान, बिरसा का यह आन्दोलन मोटे तौर पर 1895 से 1900 ई. तक चला था। उलगुलान, इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में पैदा हुआ आन्दोलन था जो केवल सरकार व उसके शोषण के विरुद्ध ही नहीं था अपितु यह विद्रोह समकालीन सामंती व्यवस्था के विरुद्ध भी था। डॉ. के.एस. सिंह के अनुसार आत्मरक्षा की अदम्य भावना से प्रेरित होकर मुंडाओं ने सामाजिक-आर्थिक शक्तियों पर जो उनकी जातीय व्यवस्था को भीतर ही भीतर कुरेदती और खोखली बनाती जा रही थी; जवाबी हमला करने की कोशिश की थी। अपनी समाज-व्यवस्था का जो भी अवशिष्ट बच रहा था मुंडा अपने आन्दोलन के जरिए, उसका पुनरुद्धार करना और सभी संभव उपायों से अपने पुराने समाज की नव रचना करना चाह रहे थे। इस बीच बिरसा की गिरफ्तारी एक से ज्यादा बार हुई। 9 जून, 1900 को 28 वर्ष की अल्पायु में बिरसा मुंडा की जीवन लीला समाप्त हुयी।

प्रस्तुत आलेख में बिरसा मुंडा की अन्तिम गिरफ्तारी और कारावास में हुई मृत्यु का वर्णन है। मुंडा लोक साहित्य में, रिसा मुंडा, जो लोकश्रुतियों के अनुसार मुंडा जाति को छोटा नागपुर लाए थे, के बाद बिरसा मुंडा जैसी लोकप्रियता किसी और को नहीं मिली। मुंडाओं के लोकगीतों में से दो गीत भी यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनमें अपने लोगों पर बिरसा का जबरदस्त प्रभाव को देखा जा सकता है। प्रस्तुत आलेख तथा गीत डॉ. कुमार सुरेश सिंह की प्रसिद्ध पुस्तक 'बिरसा मुंडा और उनका आन्दोलन' से लिए गए हैं। यह प्रस्तुति बिरसा मुंडा की पुण्य तिथि 9 जून के परिप्रेक्ष्य में है। —सं.

28 जनवरी को दो प्रमुख मुंडा सरदारों-डोंका और माझिया ने अन्य बत्तीस विद्रोहियों के साथ सामूहिक रूप से आत्म-समर्पण कर दिया। अपनी सम्पत्ति कुर्क किए जाने के कारण उन्होंने यह कदम उठाया। इससे प्रकट हुआ कि राँची जिले में आंदोलन के प्रयत्न पूरी तरह समाप्त हो गए थे। आंदोलन के क्षेत्र से फौज वापस बुला ली गई। सरकार ने निर्णय किया कि अब से वहाँ अतिरिक्त फौजें तैनात न रखी जाएँगी। यह अनुचित समझा गया कि बाहर यह भावना फैले कि सरकार अपने समर्थक और विरोधी मुंडाओं के बीच भेद-भाव बरतती है। केवल सुदूर क्षेत्रों में कुछ स्थानों पर पहरे के लिए थोड़े-से आदमी छोड़ दिए गए।

जैसाकि 1895 के आंदोलन के समय हुआ था, 1900 के आंदोलन में भी मिशनों की सदस्य-संख्या बेतहाशा बढ़ी। अधिकारियों के भय से ग्रस्त लोग गिरजाघरों की ओर मुड़े। 1899 के दुर्भिक्ष ने भी ईसाई धर्म अपनाने की प्रक्रिया तेज की थी। पर बिरसा-आंदोलन से इस प्रक्रिया को बहुत धक्का लगा था। 1885-90 में तोरपा क्षेत्र में फादर लीवेन्स के समय 15,000 मुंडाओं के नाम ईसाई धर्म अपनाने वालों में अंकित किए गए। पर जब बिरसा ने अपने लोगों से वायदा किया कि उनकी प्राचीन महानता और एक स्वतंत्र मुंडा राज्य की फिर से स्थापना

की जाएगी, तो प्राय: सभी रोमन कैथोलिक मुंडा एक साथ बिरसा-आंदोलन में शामिल हो गए। केवल मिशनों के आस-पास के क्षेत्रों के ईसाई मुंडाओं ने बिरसा का अनुयायी बनना स्वीकार न किया और जब बिरसा-आंदोलन का अंत विफलता में हुआ तो मिशनरियों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि मुंडाओं को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने का काम प्राय: नए सिरे से शुरू किया जाए और मिशनरियों ने यह काम पूरा किया। इससे स्पष्ट है कि 1922 तक रोमन कैथोलिक धर्म अपनाने वाले मुंडाओं की संख्या 30,000 तक पहुँच गई।

सरकार के भय से ग्रस्त मुंडाओं ने बिरसा-विद्रोहियों को गिरफ्तार कराने में अधिकारियों की मदद की। सरकार ने इसके लिए जो पुरस्कार घोषित किए थे, उनकी राशि का लोभ अनेक मुंडा संवरण न कर सके। बिरसा-समर्थकों को गिरफ्तार कराने के लिए खूँटी में तैंतीस और तमाड़ में सत्रह मुंडाओं को पुरस्कार दिए गए। गुटूहाटू के सिंगराई मुंडा ने विद्रोहियों की खोज में सरकार की मदद की और डोंका मुंडा तथा अन्य लोगों को गिरफ्तार कराया। उसे सौ रुपये का नकद पुरस्कार दिया गया।

बिरसा की गिरफ्तारी और कारावास

बिरसा ने अपने अंतिम दिन पोराहाट की अधित्यका (उच्च भूमि) पर जगह-जगह बिताए। उनका लगातार पीछा किया जा रहा था। रोगोटो में बिरसा-अनुयायियों की आखिरी बैठक हुई, जिसके लिए बहुत जल्दी में तैयारी की गई थी। उन्होंने उस बैठक में अपने धर्म और अपने अनुयायियों के लिए आचरण-संहिता के बारे में निर्देश दिए। जाहिर था कि वे अपने अनुयायियों का मनोबल ऊँचा करने और उनकी संख्या में वृद्धि के अंतिम और असंभव-से प्रयास में लगे हुए थे। इसलिए उन्होंने प्राणियों और खासकर अपने शरण-स्थल यानी जंगल के खूँखार एवं अन्य जानवरों के बारे में अपने धर्म की उपयोगिता के प्रदर्शन की कोशिश की। उदाहरण के लिए उन्होंने एक तिलई पेड़ से करीब आधा सेर गेहूँ बाँध कर लटका दिया और घोषणा की कि रात के समय जंगल के सभी जानवर उस ओर खिंच आएँगे। ऐसा हुआ भी, पर उपस्थित लोग प्रभावित न हुए।

सरकार ने बिरसा की गिरफ्तारी में सहायता देने के लिए जो इनाम घोषित कर रखा था, उससे पासवाले गाँवों-मानमारू और जरीकेल के सात आदमी लोभ में पड़ गए थे और वे बिरसा की खोज में लगे हुए थे। 3 फरवरी, 1900 को उन्होंने दिन में देखा कि कुछ दूर पर सेंतरा के पश्चिम-स्थित जंगल के काफी भीतर मानों एक शिविर से जलाई गई आग का हल्का-सा धुआँ उठ रहा है। वे सातों लोभी आदमी धीरे-धीरे, रेंगते हुए-से, वहाँ तक पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि बिरसा दो तलवारों के साथ बैठे हुए थे और उनकी दो पत्नियाँ, जिनमें एक ऊपर चर्चित साली और दूसरी शायद सुंगी मुंडा की पुत्री थी, उनका खाना पका रही थीं। चोरी-छिपे वहाँ पहुँचे वे लोग इस इंतजार में छिपकर बैठे रहे कि कब वे लोग सोएँ और कब उन पर धावा बोला जाए। जब काफी समय बाद बिरसा और उनकी दोनों पत्नियाँ गाढ़ी नींद में सो गईं तो उन लोगों ने ठीक मौका पाकर उन पर झपट्टा मारा और इसके पूर्व कि बिरसा आत्म-रक्षा के लिए तलवार इस्तेमाल करें, उन्हें चारों ओर से कसकर पूरी तरह अपने कब्जे में ले लिया। उन्हें तुरंत बंदगाँव में कैम्प डाले गए डिप्टी कमिश्नर के हाथ सुपुर्द कर दिया। उन लोगों को 500 रु. का नकद पुरस्कार दिया गया। सिंहभूम के डिप्टी कमिश्नर ने तुरंत कमिश्नर को इसकी खबर दी। डिप्टी कमिश्नर को आदेश दिया गया कि बिरसा को चाईबासा नहीं, राँची भेजा जाए। खबर फैलते ही बंदगाँव में तुरंत भीड़ जमा होने लगी। रिसई और आस-पास के गाँवों से उसके अनुयायी, संबंधी, बहन चंपा और बहनोई भी पहुँच गए। फिर यह अफवाह फैली कि बिरसा को छुड़ाने के लिए जिउरी से लोग लाठियों और हथियारों से लैस पहुँचने ही वाले हैं। पुलिस ने उपद्रव की आशंका देखते हुए बिरसा को खूँटी के रास्ते राँची तुरंत पहुँचा दिया। खूँटी में वे लोग बंदी बिरसा

के साथ कुछ देर के लिए ठहरे। रास्ते में जगह-जगह बिरसा के दर्शन के लिए बड़ी भीड़ उमड़ी हुई थी। उस संकट और खतरे की घड़ी में भी बिरसा के चेहरे पर मुस्कान थी। वे एक बड़ी पगड़ी बाँधे और चादर ओढ़े हुए थे।

जेल में बिरसा ने अपने बारे में नहीं, बल्कि अपने प्राय: चार सौ गिरफ्तार अनुयायियों के बारे में ही सोचा। बाद में उन्होंने अपने एक निकट अनुयायी भरमी मुंडा से कहा कि वे लोग अदालत में उनके (बिरसा के) बारे में किसी भी तरह की जानकारी से इंकार करें और वे भी उन लोगों के बारे में जानकारी से इंकार करेंगे। सिर्फ इसी प्रकार वे लोग सजा से बच सकेंगे, और किसी अन्य प्रकार नहीं। उन्हें शायद अपनी आसन्न मृत्यु का भी भान हो गया था, जो उनकी इस बात से स्पष्ट हुआ-

''जब तक मैं अपना मिट्टी का यह तन बदल नहीं देता, तुम सब लोग न बच पाओगे। निराश न होना। यह मत सोचना कि मैंने तुम लोगों को मँझधार में छोड़ दिया। मैंने तुम्हें सभी हथियार और औजार दे दिए हैं। तुम लोग उनसे अपनी रक्षा कर सकते हो।''

इस सिलसिले में बिरसा ने पिछले दिनों सरदारों के साथ के अपने मतभेदों का भी जिक्र किया। उन्होंने कहा कि यदि उनके द्वारा सुझाए गए धार्मिक पथ को अपनाया गया होता तो उसके नतीजे बेहतर होते-

''मैंने तुम लोगों से कहा था कि हम यदि धर्म के अस्त्रों से लड़ते तो हमें ये सारी कठिनाइयाँ न उठानी पड़तीं और हमारा उद्देश्य भी पूरा हो जाता। तुम लोगों ने उसके विपरीत जो रास्ता चुना, उसके कारण हमें आज जेल की खिचड़ी खानी पड़ रही है। हमें अपने परिवार, अपने बच्चों और पत्नियों को बेसहारा छोड़ना पड़ा। अगर हमने एक-दूसरे की राय़ मानी होती तो हमारी यह दुर्गति न हुई होती। पर फिर भी हमें अपना दिल छोटा न करना चाहिए। हमें धीरज से इंतजार करना चाहिए। मैं एक न एक दिन फिर लौटूँगा और अपना राज्य हासिल करके रहूँगा। पर अगर इसके लिए सरदारों की तरह मैं कोई एक दिन नियत कर दूँ तो तुम सिर्फ उस दिन की इंतजारी में हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहोगे।''

बिरसा ने यह भी कहा कि अंग्रेजों को दस साल तक ही इस क्षेत्र में जिंदा रहने देंगे। उन्होंने सभी को उनके धर्म के झंडे के नीचे आने का आह्वान दिया। उन्होंने कहा कि वे अपने लोगों के बीच फिर से जन्म लेंगे और उनके विचार उनकी भूमि में अंतत: विजयी होंगे-

''मैं एक बार फिर आऊँगा। मैं बुंडू, तमाड़, सिंहभूम, क्योंझर, गंगपुर और बसिया में होलिकाग्नि की जोत जलाऊँगा। मैं सोनपुर में पाँवों से जमीन की धूल उड़ाते नाचूँगा। बानों में करकोटा गाँव में सिल्क के एक कीड़े ने अंडे दिए हैं (यानी सुदूरस्थ गाँवों में कई गुना वेग से नए विचारों का प्रसार हो रहा है)।''

एक अन्य क्षण में बिरसा क्रोध में आकर पहरेदार से बोले-

''आज तुम मुझ पर पहरा दे रहे हो। एक दिन तुम देखोगे कि मैं जमीन पर कैसा रूप बना देता हूँ। जिस तरह मशीन में बाजरे की पिसाई की जाती है, मैं जमीन को पीसकर चूर-चूर कर दूँगा। जिस तरह गोंदली (एक जंगली घास) भूँजी जाती है, मैं जमीन को भूँज डालूँगा। अगर इस काम में जमीन टुकड़े-टुकड़े भी हो गई, तो भी मैं उसे नहीं छोड़ूँगा। मैं 52 किलो (52 परगनों) और उतने ही फाटकों के देश में दुश्मनों को तंग कर मारूँगा और बर्बाद कर दूँगा। मैं उन्हें छोड़ूँगा नहीं। मैं दुनिया को हिलाकर रख दूँगा।''

बिरसा के ये उद्धरण और मसीही भाषा में प्रलाप, जो अक्सर पागलपन की सीमा तक पहुँचे हुए-से लगते थे, उनकी मानसिक व्यथा और बिगड़ते स्वास्थ्य के द्योतक थे।

बिरसा मुंडा : बीमारी और मृत्यु

20 मई 1900 को जब सबसे अलग कैद में रखे बिरसा के पास सुबह 5 और 5.20 बजे के बीच, हमेशा की तरह, भोजन ले जाया गया तो ऐसा लगा कि खाने

की अनिच्छा के कारण उन्होंने भोजन नहीं किया। उस समय उन्होंने तबीयत अच्छी न रहने की शिकायत न की। बाद में 5.57 बजे सुबह उन्हें अन्य उन्नीस विचाराधीन कैदियों के साथ अदालत की हाजत में ले जाया गया। फिर वे अदालत में बीमार हो गए। तब उन्हें जेल वापस ले जाया गया। जेल-अस्पताल के सहायक चिकित्सक ने उन्हें सुबह 9.45 बजे कुछ दवा दी। जाँच से पता चला की उनकी नाड़ी कमजोर और तेज गति से चल रही थी, उनकी जीभ सूख रही थी और उसमें जलन थी। उन्होंने प्यास तेज होने की तकलीफ बतलाई। उन्होंने यह भी बताया कि सुबह पहली बार शौच के लिए जाने पर उन्हें मल-त्याग के साथ एक बार पेशाब हुआ था। जेल-अधीक्षक ने उनकी नाड़ी कमजोर और धीमी गति से चलती पाई। उनकी आँखें कोटरों के भीतर धँस गई थीं और उनकी आवाज लड़खड़ाती-सी और अस्पष्ट थी। वे तीन दिनों तक बहुत गिरी हुई हालत में रहे। अगले दिन (1 जून, 1900) डिप्टी कमिश्नर को सूचना दी गई कि बिरसा को हैजा हो गया है और अब उनके जीवित रहने की संभावना नहीं है। डिप्टी कमिश्नर ने जेल जाकर बिरसा को देखा और हालत खराब पाई। फिर उन्होंने जेल अधीक्षक कैप्टन ए.आर.एस. ऐंडरसन को लिखा कि वे जेल आकर बिरसा को देखें और यदि उनकी हालत में कोई सुधार ला सकें तो लाएँ। ऐंडरसन के इलाज से बिरसा की हालत ठीक होने लगी और उसमें 7 जून तक धीरे-धीरे और भी सुधार होता रहा। पर 8 जून को उनकी हालत फिर खराब हो गई। उस रात उन्हें तीन दस्त हुए। एक और दस्त 9 जून को सुबह हुआ। फिर उनकी हालत बहुत गिर गई। 8 बजे सुबह वे अचानक चिल्लाए और बार-बार खून का वमन करने लगे। फिर वे बेहोश हो गए और 9 बजे सुबह उनकी मृत्यु हो गई।

जब उनका शव बाहर लाया जा रहा था तो जेल में बहुत हल्ला उठा। सभी बंदी बिरसा-अनुयायियों को बुलाया गया कि वे नेता की लाश पहचान लें। पर डर से कोई भी नहीं आया। राँची जेल के अधीक्षक ने 9 जून को शाम साढ़े 5 बजे उनका अंत्य-परीक्षण किया। पाया गया कि उनके पेट के सभी भाग सिकुड़ गए थे, उनमें खून के निशान और द्रव थे और छोटी अँतड़ी नष्टप्राय और बहुत पतली हो गई थी। इस बात की सावधानी से जाँच की गई कि पेट में विष-पान के लक्षण तो नहीं हैं, पर वैसा कोई लक्षण नहीं पाया गया। अंत्य-परीक्षण के बाद घोषणा की गई कि बहुत दिनों तक पेचिश के अपने पुराने रोग से पीड़ित रहने और फिर हैजा का अचानक हमला हो जाने के कारण बिरसा की अँतड़ियों की ऊपरी दो तहों में बहुत ज्यादा खून जम गया था। इस वजह से उनके हृदय के बाएँ हिस्से में भी खून का जमाव हो गया था, जिससे वे बेहोश हो गए और अंतत: मृत्यु के शिकार हुए। इसके कुछ दिनों पहले बिरसा ने एक प्रश्न के उत्तर में इस बात से इंकार किया था कि उन्होंने जेल के बाहर से मँगाई कोई चीज खाई या पी थी। पर एक बार उन्होंने जेल के गड्ढे से लाए गए पानी से अपने दाँत साफ किए थे। जेल में जो अन्य कैदी बिरसा के बंदी-कक्ष के पास रखे गए थे, उन सब का स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक था। यद्यपि जेल-अधीक्षक ऐंडरसन ने सावधानी के साथ जाँच-पड़ताल की पर वे इस बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ रहे कि आखिर बिरसा को हैजा कैसे हो गया।

जहाँ तक बिरसा के शव-संस्कार का संबंध था, उसमें जेल-संहिता के सामान्य नियमों से हटकर कुछ नहीं किया जा सकता था। अगर बंदी बनाए गए कुछ प्रमुख बिरसा-अनुयायियों को बिरसा का शव-संस्कार स्वयं देखने के लिए जेल से बाहर लाया जाता, तो उसका दुहरे ढंग से गलत मतलब लगाया जाता। यदि ऐसा किया होता तो बिरसा-अनुयायी यह खबर बढ़ा-चढ़ाकर प्रचारित करते और कहते कि उनके नेता का शव-संस्कार बड़े सम्मान के साथ किया गया। वे शायद यह भी कहते कि उस समय कुछ आश्चर्यजनक घटना भी हुई। सरदारों के उद्देश्यों के अथक और अनवरत प्रवक्ता वकील जैकब शायद यह प्रचार करते कि अधिकारियों ने बिरसा का

शव-संस्कार उनके अभागे अनुयायियों की उपस्थिति में किया और उन लोगों को यह दुखद दृश्य चुपचाप देखने को बाध्य किया गया। लोगों के बीच प्रचलित एक विवरण में कहा गया कि राँची में कोकर में स्थित वर्तमान शराब-भट्ठी के निकट हरमू नदी के घाट पर बिरसा का शव जेल के भंगी द्वारा गोइठों की आग में जलाया गया।

बाद में यह रिपोर्ट मिली कि हैजे से सिहंभूम के एक विचाराधीन कैदी की मृत्यु हो जाने का एकमात्र मामला बिरसा के बीमार पड़ने के दस दिन पूर्व हुआ था। जेल-अधिकारियों को यह संदेह हुआ कि शायद बंदियों को अदालत में अथवा वहाँ ले जाने या वापस लाने के रास्ते में दूषित पानी या भोजन दिया गया था, पर उनके साथ जानेवाले प्रहरी और अन्य कैदियों ने इस तरह की कोई बात होने से साफ इंकार किया। जे.ए. क्रैवर्न पर बिरसा की मृत्यु की जाँच का भार सौंपा गया था। उन्होंने मृत्यु के कारण के बारे में यह निष्कर्ष दिया कि पेचिश से बिरसा के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँच चुकी थी, जिससे वह हैजे का आक्रमण बर्दाश्त न कर पाए। इस बारे में गवाहियों से यही निष्कर्ष निकला कि बिरसा की मृत्यु प्राकृतिक कारणों से हुई, और मृत्यु का कोई अन्य कारण होने के बारे में संदेह की कोई गुंजाइश न थी। पर बिरसा को हैजा किस वजह से हुआ, इस प्रश्न पर सिविल सर्जन किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच सके और उन्हें अंदेशा था कि यह मामला बराबर एक रहस्य ही बना रहेगा। राज्य सरकार ने इस बात की पुष्टि की कि बिरसा हैजे से मरे। यह बीमारी उनके लिए घातक न होती, अगर वे पहले ही अपनी पेचिश की बीमारी से बहुत दुर्बल न हो गए होते। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने भी इसमें षड्यंत्र का कोई आधार न पाया और यह मत प्रकट किया कि इस खेदजनक घटना के लिए जेल या चिकित्सा-अधिकारियों की कार्रवाई के चलते उन लोगों पर किसी तरह का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

पर फिर भी बिरसा की मृत्यु एक पहेली ही बनकर रह गई। यहाँ तक कि बिरसा के समसामयिक आलोचक घरबंधु ने इस घटना पर अपना विस्मय प्रकट किया और मृत्यु के लिए उन लोगों (सरदारों?) को उत्तरदायी करार दिया जो उनसे किसी तरह छुटकारा पाना चाह रहे थे। उन्हें इस दुनिया से ही हटा देने के कुछ बाध्यकारी कारण थे। यदि उन्हें आजीवन कारावास दिया जाता, जिसकी पूरी संभावना थी, तो उससे एक जीवित खतरा अर्थात् वे कायम तो रहते ही। इसीलिए उन्हें विष देकर मार डालने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। और फिर उनकी मृत्यु से उनके सहयोगियों पर मुकदमों को तैयारी में कोई अंतर न पड़ता। वे मर गए, इस कारण उनके सहयोगियों को कानून के चंगुल से छुटकारा तो न मिल सकता था।

बिरसा की मृत्यु के बारे में उनके अनुयायियों ने अपनी कहानी गढ़ी है। उनके अनुसार मरचा करोड़ा के सुकदेव (?) मुंडा ने बिरसा को रोटी में जहर मिलाकर दिया था। बिरसा ने भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने कहा, "तू फिक्र मत कर। तुम्हारे राज-काज के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। इस पृथ्वी पर तुम्हारा जन्म तीन बार होगा।" बिरसा ने अपने अंतिम संस्कार के बारे में हिदायतें दीं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनके मरने के बाद जेल में बंद उनके अनुयायियों ने उन्हें डर के मारे पहचानने से इंकार कर दिया। बिरसा को जहाँ जलाया गया, वहाँ बिरसा-भगतों के अनुसार बाँस का एक पेड़ उगा जिसे अंग्रेजों ने काट डाला, एक गाय का जन्म हुआ जो मार डाली गई और फिर एक भेड़ का जन्म हुआ जिसे वे मार नहीं सके। उनके अनुसार बिरसा का पुनर्जन्म तीन बार होगा। पहला अवतार गंदर्प मुनि (?) के रूप में, फिर वे सईल रकब की मार-काट का बदला लेंगे और अंग्रेजों को भगाकर मुँड़कट्टी स्वराज्य की स्थापना करेंगे। यह जन्म महात्मा गाँधी के रूप में हुआ। ❑

(पृष्ठ 156-162)

मुंडा लोकगीत

(एक)

ओ बिरसा, तुम्हारी बंशी और बेला का स्वर वन में
थिरकन पैदा कर देता है।
उसका रस लेने सभी अपने-अपने घेरे से बाहर निकल आते हैं,
जंगल में काम करते, पेड़ काटते,
धूल-गर्द साफ करते और यहाँ तक कि
भोजन पर बैठे लोग भी तुम्हारी वंशी का स्वर
सुन ठगे-से रह जाते हैं और अकस्मात् उनके हाथ रुक जाते हैं,
यहाँ तक कि जंगल के खूँखार पशु भी अपने-अपने घरों से
निकल आते हैं।
रतन सिंह कहता है कि यह सच बात है,
हमारा बिरसा पृथ्वी पर सभी प्राणियों को अपनी ओर खींच लाता है।

☆ ☆ ☆

(दो)

जमींदारों के दमन से पीड़ित,
लोगों की दुःख-विपदाएँ असह्य हो उठीं,
देश असहाय और बेसहारा हो गया,
आओ, हम झट से धनुष, तीर और कुल्हाड़ी उठा लें
आज जिन्दगी से मौत कहीं अच्छी है।
बिरसा भगवान हमारे नेता हैं,
वे हमारी रक्षा के लिए धरती पर आए हैं।
आज....
हमलोग तरकस, तीर और तलवार लेकर तैयार रहें,
हम डोम्बारी पहाड़ी पर इकट्ठे हों,
धरती के पिता हमें वहाँ हमारा उद्‌बोधन करेंगे।
हम बन्दरों से न डरेंगे
हम जमींदारों, साहूकारों और दूकानदारों (विदेशी)
को छोड़ेंगे नहीं।
वे हमारी जमीन हड़पे बैठे हैं।
हम अपने खूँटकट्टी* अधिकार न छोड़ेंगे
हमने चीतों और साँपों (के जबड़ों) से अपनी
जमीन-छीनकर उसे जोता-बोया।
और वह खुशनुमा जमीन उन लोगों ने हमसे छीन ली।

(पृष्ठ 262 व 267)

(डॉ. कुमार सुरेश सिंह सुप्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री हैं और भारत के आदिवासियों का जीवन, समाज और संस्कृति के इतिहास को 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक के 10 खण्डों में अत्यन्त प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया है। इनके लेखन से साहित्यकार भी प्रभावित होते रहे हैं और प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं। सुप्रसिद्ध बंगला लेखिका महाश्वेता देवी का प्रसिद्ध उपन्यास 'जंगल के दावेदार' डॉ. कुमार सुरेश सिंह को समर्पित है।)

(हम डॉ. कुमार सुरेश सिंह के प्रति 'बूधन' में इन अंशों के प्रकाशन की अनुमति के लिए अत्यंत आभारी हैं। हम अनुमति के लिए पुस्तक के प्रकाशक 'वाणी प्रकाशन' के भी आभारी हैं।)

---

* मुंडारी खूँटकट्टी=मुंडाओं की मूल भूमि-काशत एवं व्यवस्था

मुस्लिम समाज के इतिहास में जाति

■ इम्तियाज़ अहमद

इस शोध-पत्र में यह दिखाने की कोशिश की गई है कि किस प्रकार मध्यकाल में भारतीय मुस्लिम समाज में जाति प्रथा का उद्भव हुआ और फिर कैसे हाल के वर्षों में मुस्लिम समुदाय में दलित पहचान की जागरूकता पैदा हुई है। पहले मुद्दे का केन्द्रबिन्दु व्यापक है और भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा का संक्षिप्त मूल्यांकन भर किया गया है। दूसरे मुद्दे के संदर्भ में चर्चा का बिन्दु अपेक्षाकृत ज्यादा केन्द्रित है और इसके अन्तर्गत हाल के राज्य-विभाजन (झारखण्ड बनने) के पूर्व के बिहारी समाज की विवेचना की गई है।

इस्लाम अपने अनुयायियों को धार्मिक सिद्धान्त ही नहीं बतलाता, बल्कि उम्मा के रूप में सामाजिक संगठन का एक सबल आधार भी प्रस्तुत करता है। समतामूलक सामाजिक अवधारणा पर आधारित इस समाज के सदस्यों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव की गुंजाइश नहीं। अपने अन्तिम उपदेश में पैगम्बर साहब ने इस संदर्भ में अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त की है। उन्हीं के शब्दों में –"अरब गैर अरब से बेहतर नहीं और न ही गैर अरब बेहतर हैं... वस्तुतः सभी मुसलमान भाई-भाई हैं।" किन्तु उम्मा की यह अवधारणा वास्तव में आदर्श अवधारणा के रूप में ही सीमित रही। व्यवहार में मुस्लिम समाज विभिन्न नस्लों, मतों और बिरादरियों में विभाजित हो गया। इस्लाम का आरंभिक इतिहास (भारत में आगमन से पूर्व) मुस्लिम समाज की इस विभाजन प्रक्रिया के उदाहरण से भरा पड़ा है और इसके कारण यदा-कदा कटुतापूर्ण संघर्ष भी होते रहे हैं। किन्तु यह विभाजन हिन्दू समाज में वैदिक काल से प्रचलित जाति प्रथा से सर्वथा भिन्न था।

मध्य एशिया के प्रसिद्ध विद्वान अलबरूनी ने अपनी पुस्तक 'तहकीक मा-लील हिन्द'[2] में इस संबंध में एक महत्वपूर्ण बात कही है। हिन्दू समाज की जाति-प्रथा का उल्लेख करते हुए वह लिखता है-"हम मुसलमान अपनी इस अवधारणा के कारण कि प्रत्येक इन्सान इबादत के अतिरिक्त अन्य सभी दृष्टिकोण से समान है, इस मुद्दे का दूसरा पहलू प्रस्तुत करते हैं। और यही सबसे बड़ी बाधा है हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच किसी प्रकार के सामंजस्य में।"[3]

इसी संदर्भ में अलबरूनी ने एक दूसरी रोचक किन्तु महत्वपूर्ण बात कही है। इस्लाम पूर्व फारसी समाज की चर्चा करते हुए वह कहता है- "प्राचीन काल में अपने राजकाज के प्रति पूर्ण समर्पित राजा अपना सर्वाधिक ध्यान अपनी प्रजा को विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों में विभाजित करने में लगाते थे और इस विभाजन को बनाये रखने की पूरी कोशिश भी करते थे। इसीलिए वे विभिन्न वर्गों के लोगों को एक दूसरे से मिलने से रोकते थे। उन्होंने प्रत्येक वर्ग के लिए खास किस्म का कार्य या हस्तकला भी निर्धारित कर रखी थी। वे किसी भी व्यक्ति को अपने वर्ग की सीमा का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं देते थे और जो व्यक्ति इस वर्गीय व्यवस्था से संतुष्ट नहीं होता था उसे सजा भी देते थे।"

प्राचीन खुसरुरू शासकों के इतिहास में इसका अच्छा उदाहरण मिलता है, क्योंकि उन्होंने इसकी भव्य परंपरा कायम की थी। कोई व्यक्ति अपनी विशिष्ट प्रतिभा या रिश्वत के सहारे इसे भंग नहीं कर सकता था। जब अर्दशीर बिन बबक ने फारसी साम्राज्य का पुनरुद्धार किया तो उन्होंने इस वर्ग या जाति व्यवस्था को भी पुनर्जीवित किया जो इस प्रकार है: इस व्यवस्था के अंतर्गत पहली श्रेणी में राजकुमार और सामन्त आते थे; दूसरी श्रेणी में मौलवी-मुल्ला, फकीर एवं वकील; तीसरी श्रेणी में चिकित्सक, नजूमी एवं अन्य वैज्ञानिक, एवं चौथी श्रेणी में पशुपालक एवं कारीगर आते थे। फिर इन श्रेणियों की भी उपश्रेणियाँ थीं जैसा कि किसी जाति की उपजातियाँ होती हैं।[4]

एक अन्य संदर्भ में अलबरूनी ने हिन्दू जाति की विस्तृत विवेचना की है। यद्यपि जाति-प्रथा का उल्लेख इससे पहले अरब के यात्रियों[5] एवं सौदागरों ने भी किया है, किन्तु अलबरूनी ने इसका काफी सारगर्भित एवं सटीक उल्लेख किया है। वह लिखता है- ''हिन्दू अपनी जातियों को वर्ण कहते हैं....प्राचीनकाल से चार ही वर्ण हैं...सर्वोच्च जाति ब्राह्मणों की है जिन्हें हिन्दू ग्रंथों ने ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न संन्यासी, पुजारी एवं धार्मिक विधान के ज्ञाता माना है। उनके बाद क्षत्रिय आते हैं जिनके बारे में प्रचलित है कि वे ब्रह्मा के कंधों एवं हाथों

यह महत्वपूर्ण बात है जो यह बतलाती है कि भारतीय प्रभाव को आत्मसात् करने के बावजूद मुस्लिम समाज ने बहुत हद तक अपने उदारवादी चरित्र को बनाए रखा था। मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत अपने से उच्च वर्ग में पहुँचना बहुत ही आसान था, जबकि हिन्दू समाज में इसकी व्यवस्था नहीं थी।

से जन्मे थे...तीसरी जाति वैश्यों की है जिन्हें ब्रह्मा के जांघों से उत्पन्न माना जाता है...तत्पश्चात् शूद्र आते हैं जिन्हें ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न माना जाता है। शूद्रों के बाद अन्त्यज आते हैं जो विभिन्न प्रकार के सेवाकर्म करते हैं, इनकी गिनती किसी जाति में नहीं होती। ये सिर्फ किसी शिल्प या व्यवसाय से जुड़े सदस्यों के रूप में जाने जाते हैं। इनकी आठ श्रेणियाँ हैं, जिनमें परस्पर वैवाहिक संबंध होता है- सिवाय फूलर, मोची एवं बुनकरों के, जिनसे कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहता। ये आठ श्रेणियाँ हैं-फूलर, मोची, नट, टोकरी व ढाल बनाने वाले, नाविक, मछुआरे, बहेलिया एवं बुनकर।

हादी, डोम, चांडाल एवं बधातौ की गिनती किसी जाति या श्रेणी में नहीं होती। वे गाँव-घरों की सफाई जैसे निकृष्ट कामों में संलिप्त होते हैं। उनकी एक ही जाति मानी जाती है और उन्हें सिर्फ उनके काम के आधार पर पहचाना जाता है।''[6]

उपर्युक्त उदाहरण एवं उसके पूर्व की विवेचना कुछ मुद्दों पर प्रकाश डालती हैं-

(1) मुस्लिम समाज अपनी सैद्धान्तिक समानता के बावजूद मूलतः श्रेणीबद्ध समाज था।

(2) श्रेणियों में विभाजित समाज का ऐसा ही स्वरूप इस्लाम पूर्व ईरान में विद्यमान था; अन्तर सिर्फ इतना कि अरबों में श्रेणियों को आधार वर्ग पूर्वाग्रह एवं जातिगत श्रेष्ठता थी, न कि व्यावसायिक श्रेणियाँ।

(3) ईरान के इस्लाम पूर्व शासकों द्वारा समाज में कायम विभाजन का अलबरूनी समर्थन भी करता है और प्रशंसा भी।

(4) श्रेणीगत विभाजन पर आधारित जाति का अपरिवर्तनीय संस्थागत रूप भारतीय उपमहाद्वीप से संबंध होने से पूर्व मुसलमानों को ज्ञात नहीं था।

(5) छुआछूत या अछूत जैसी अवधारणा, जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था का अभिन्न रूप थी, मुसलमानों में नहीं थी।

यह स्थिति थी ग्यारहवीं सदी की, जब इस्लाम एवं भारत में पहला टिकाऊ सम्बन्ध कायम हुआ था।[7]

मुसलमानों में जाति प्रथा मध्यकाल में क्रमिक रूप से विकसित हुई। प्रारंभ में यह विभाजन मुख्य रूप से वर्ग आधारित था। इसी समय अभिजात वर्ग का उदय हुआ जिसे अशरफ कहा गया। इस वर्ग में मुख्यतः विदेशी आप्रवासी एवं उच्च जाति के हिन्दू से धर्म परिवर्तन करके आए कुलीन व्यक्ति थे। दूसरा वर्ग 'अजलाफ' का था, जिससें सामान्य स्तर के व्यक्ति थे। इस वर्ग में हिन्दू निम्न जाति से धर्म परिवर्तन करके आए लोग थे। कालान्तर में इन दोनों वर्गों में भी विभाजन हुए। अशरफ सैय्यद, शेख, पठान इत्यादि उपवर्ग में विभाजित हुए और इन्हें मुसलमानों की विशिष्टि जातियों की पहचान मिली। अपने पेशे के आधार पर 'अजलाफ' (जोलाहा) बुनकर, दर्जी, कशीदाकार, रंगरेज इत्यादि

अलग-अलग जातियों में विभाजित हुए। भारतीय समाज के तर्ज पर जातिगत पहचान जन्म पर आधारित थी। किन्तु, साथ ही साथ यह काम एवं आर्थिक अवस्था पर आधारित भी थी, इसलिए इनमें प्रायः परिवर्तन भी हो सकता था। फारसी की एक प्रसिद्ध चौपाई इसका खुलासा करती है। इस चौपाई में एक व्यक्ति दावा करता है कि प्रारंभ में वह एक धुनिया[8] था, फिर उसने कुछ पैसा कमाया और कपड़ों का व्यापार शुरू किया तो उसे शेख[9] के रूप में जाना गया। तत्पश्चात् वह दावा करता है कि यदि उसने अच्छा मुनाफा कमा लिया तो वह आसानी से सैयद[10] बन जाएगा।

यह महत्वपूर्ण बात है जो यह बतलाती है कि भारतीय प्रभाव को आत्मसात् करने के बावजूद मुस्लिम समाज ने बहुत हद तक अपने उदारवादी चरित्र को बनाए रखा था। मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत अपने से उच्च वर्ग में पहुँचना बहुत ही आसान था, जबकि हिन्दू समाज में इसकी व्यवस्था नहीं थी। मुस्लिम समाज में कोई व्यक्ति धुनिया (निम्न जाति) से सैयद (उच्च जाति) बनने की ख्वाहिश रख सकता है। दूसरी तरफ एक और उदाहरण है। सिन्ध में अरबों की विजय के समय जाटों का उल्लेख निम्न जाति के रूप में मिलता है। उन्हें शूद्रों के समकक्ष माना जाता था और उन्हें बहुत चीजों से वंचित रखा गया था। सल्तनत काल में वे समृद्ध कृषक के रूप में दिखााई पड़ते हैं और इनकी स्थिति वैश्यों के समकक्ष है। अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते वे एक अलग साम्राज्य कायम कर लेते हैं और उनकी स्थिति क्षत्रियों के सदृश हो जाती है। उनके लिए यह एक लम्बी छलांग है। आठवीं सदी से अठारहवीं सदी तक वे शूद्र से क्षत्रिय बन जाते हैं। यह उत्थान व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक है। किन्तु, पहले उदाहरण में सामाजिक उन्नयन तीव्र (कुछ दशकों में) भी है और व्यक्तिगत भी, जिसका आधार आर्थिक अवस्था का उन्नयन था। उपर्युक्त दो उदाहरण मध्यकाल में भारतीय एवं मुस्लिम समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था के प्रकृतिगत अन्तर को स्पष्ट करते हैं।

कुछ अन्य विशेषताएँ भी रोचक हैं। सामान्य मुसलमान जाति व्यवस्था के विभिन्न प्रतिबंधों को मानते थे। यह सही कहा गया है कि "इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बावजूद सामान्य मुसलमानों ने जाति विशिष्टता एवं सामान्य सामाजिक विशिष्टाओं से प्रभावित अपने पुराने परिवेश को नहीं त्यागा। परिणामस्वरूप भारतीय इस्लाम क्रमशः हिन्दुत्व के सामान्य लक्षणों को आत्मसात् करता चला गया। जिन विभिन्न वर्गों से मुस्लिम समुदाय की संरचना हुई थी वे एक-दूसरे से अलग बसने लगे-एक ही शहर के विभिन्न भागों में भी।"[11]

कुछ फर्क भी था। मुस्लिम समाज में अछूत की कोई अवधारणा नहीं थी। कुछ व्यवसायों को निःसंदेह 'गन्दा' माना जाता था, किन्तु उस व्यवसाय में लगे लोगों को इस आधार पर मस्जिद में जाने से नहीं रोका जाता था। दूसरा अन्तर यह था कि एक साथ बैठकर खाने से भी किसी मुसलमान को कोई परहेज नहीं था; मुसलमानों के साथ ही नहीं, वरन् हिन्दुओं के साथ भी खाने से परहेज न था। यह सत्य है कि इसे बढ़ावा नहीं दिया जाता था, किन्तु इस पर कोई बन्दिश भी नहीं थी। तीसरी बात कि सैयद एवं शेख अथवा शेख एवं पठान के बीच अन्तर्विवाह मुस्लिम समाज में कोई अस्वाभाविक बात न थी। जहाँ एक ही वर्ग में विवाह संबंध को अच्छा माना जाता और एक ही कुफु (समान वंश एवं समकक्ष) में विवाह करने पर जोर भी था वहीं दूसरी तरफ इसके लिए कोई कड़ाई न थी। 'अशरफ' और 'अजलाफ' के बीच विवाह संबंध के उदाहरण विरले मिलते हैं और इसे अच्छा माना भी नहीं जाता था। वहीं दोनों वर्गों की उपश्रेणियों में विवाह की अनुमति थी। इससे पता चलता है कि मध्यकाल में हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था उतनी सख्त न थी।

मुगल काल में हम एक अत्यन्त रोचक विचार से रूबरू होते हैं। इसे अबुल फजल ने राजशाही के अपने सिद्धान्त का अभिन्न अंग माना है। वे मानते हैं कि मानव समाज चार तत्त्वों से बना है। ये हैं- योद्धा, कारीगर, विद्वान एवं दास। राजा का यह दायित्व था कि वह समाज

में स्थायित्व कायम करे ताकि प्रत्येक वर्ग अपने लिए निर्धारित काम को पूरा करे और दूसरे के काम में हस्तक्षेप न करे। यह विचार मुगलकालीन राजनैतिक विचारधारा पर इस्लाम पूर्व ईरानी प्रभाव को ही नहीं दर्शाता, अपितु उस अवस्था को भी दर्शाता है जिसमें सामाजिक विभाजन को प्राय: शासकीय अनुमोदन भी प्राप्त था।[12]

मध्यकाल की अवस्था की समीक्षा से हम कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी पाते हैं-

(1) मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा का जो स्वरूप आज विद्यमान है वह मूलत: भारतीय मुस्लिम समाज पर हिन्दू समाज का प्रभाव है।

औपनिवेशिक काल में प्रवेश के साथ जाति व्यवस्था मुस्लिम समाज के एक प्रमुख तत्त्व के रूप में उभरती है।

फ्रांसिस बुकानन ने 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में बिहार के जिलों एवं पटना के बारे में लिखा है-''जाति का प्रचलन यहाँ मुस्लिम समाज में बहुत है; यद्यपि प्रबुद्ध वर्ग इस सिद्धान्त को खारिज करता है; पटना के तीन कुलीन व्यक्तियों को छोड़ कोई भी काफिरों के साथ भोजन नहीं करता और बहुत-सी जातियों के साथ विवाह संबंध स्थापित नहीं करता; बहुत-सी जातियाँ काफी हद तक सम्मान एवं पद से सदा के लिए वंचित कर दी गई हैं।

(2) मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा कम सख्त थी; इसमें व्यक्ति को अपने सामाजिक उन्नयन के अवसर प्राप्त थे और छुआछूत से रहित इस समाज में अन्तवर्गीय विवाह को अनुमति प्राप्त थी।

(3) सामाजिक विभेद 'विदेशी' एवं भारतीय के आधार पर अपेक्षाकृत ज्यादा सख्त था, बनिस्बत जाति भेद के।

रोचक तथ्य यह है कि मध्यकालीन स्रोत मुख्यत: 'अशरफ' के पद एवं महत्व को दर्शाते हैं। 'अजलाफ' के प्रति जागरूकता अत्यन्त कम है। उदाहरण के लिए, अबुल फजल ने अपनी पुस्तक 'आइन' में मुगल साम्राज्य में विभिन्न परगनों में बसी जातियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। किन्तु उसमें उल्लेख सिर्फ सैयदों, शेखजादों, पठानों, राजपूतों और ब्राह्मणों इत्यादि का ही मिलता है। उनके द्वारा प्रस्तुत आबादी संबंधी आँकड़ों में मुश्किल से नीची जाति के लोगों का उल्लेख मिलता है। इसका एक कारण है कि उन्होंने मुख्यत: जमीन्दारों का उल्लेख किया है, सामान्य लोगों या कृषक मजदूरों का नहीं। इस प्रकार इसे ऊँची जाति का उल्लेख समझा जा सकता है।

हालाँकि इस काल के लोकप्रिय साहित्य में नीची जाति की आकांक्षाओं की झलक मिलती है। भक्त-संतों, विशेषकर निर्गुण पंथी संतों ने जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था एवं 'उच्च' एवं 'निम्न' के भेद की जमकर भर्त्सना की। जहाँ सगुण परम्परा ने व्यवस्था में सुधार पर जोर दिया, वहीं निर्गुणपंथियों ने इस अधार्मिक भेदभाव की समाप्ति पर।[13]

सूफियों के उपदेश में भी इस समस्या के प्रति जागरूकता दिखती है। किन्तु, उनका जोर जाति व्यवस्था की भर्त्सना से ज्यादा समानता एवं भाईचारे को सामाजिक जीवन के सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादन पर है। शायद इस कारण से कि समानता एवं भाईचारे की व्यापक अवधारण जाति-भेद को भी नकारती थी या इस कारण से भी कि मुसलमानों में जाति व्यवस्था कम घातक होने के कारण तीव्र भर्त्सना की आवश्यकता उतनी महसूस नहीं की गई। यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि सूफियों का ज्यादा ध्यान हिन्दू-मुस्लिम के बीच की खाई को पाटना और इस्लाम की उदारवादी छवि को प्रतिस्थापित करना था न कि जाति व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाना। फिर भी समग्र रूप से इस काल के लोकप्रिय साहित्य में जाति व्यवस्था एवं 'ऊँच', 'नीच' की भावना को नकारना निश्चित रूप से प्रमुख भावना के रूप में मुखर हुआ है।

औपनिवेशिक काल में प्रवेश के साथ जाति व्यवस्था मुस्लिम समाज के एक प्रमुख तत्त्व के रूप में उभरती है। फ्रांसिस बुकानन ने 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में बिहार के जिलों एवं पटना के बारे में लिखा है-''जाति का प्रचलन यहाँ मुस्लिम समाज में बहुत है; यद्यपि प्रबुद्ध वर्ग इस सिद्धान्त को खारिज करता है; पटना के तीन कुलीन व्यक्तियों को छोड़ कोई भी काफिरों के साथ भोजन नहीं करता और बहुत-सी जातियों के साथ विवाह संबंध स्थापित नहीं करता; बहुत-सी जातियाँ काफी हद तक सम्मान एवं पद से सदा के लिए वंचित कर दी गई हैं। सैयद, जिसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, में पैगम्बर साहब के वंशज आते हैं। उनकी बेटियाँ मुगलों में ब्याही नहीं जाती। इस जाति के लगभग साढ़े तेरह हजार परिवार होंगे। जातीय श्रेष्ठता की दृष्टि से सैयदों के बाद आते हैं ओमर के संतान फारूकी, अबुबकर की संतति सिद्दिकी, ओसमां के वंशज ओसमानी और फरीदी संत के वंशज फरीदी। इन सबको असल शेख कहा जाता है और ये 'अशरफ' में आते हैं। हालाँकि निम्न वर्ग के लोग भी यह उपाधि (शेख) धारण करते हैं, लेकिन इस आधार पर उन्हें उच्च वर्ग में प्रवेश नहीं मिलता। वास्तविक शेखों की संख्या अति नगण्य है।

मुगल और पठान (जिन्होंने हाल तक भारत में शासन किया) आज उपेक्षा के पात्र बनते जा रहे हैं- विशेषकर मुगल, जो सुसंस्कृत सुशील नजर आते हैं। किन्तु पठान लड़ाकू जाति है और लोग उनसे डरते भी हैं। मुगलों की संख्या भी काफी कम है और संभवतः उनकी आबादी 600 परिवार से ज्यादा नहीं है- इनमें से आधे परिवार शेखपुरा में बसते हैं और शेष के तीन चौथाई पटना में।

पठानों के करीब 6000 से अधिक परिवार हैं। वे मुख्यतः नवादा, शेखपुरा और पटना में बसते हैं। इनमें से अधिकांश को अभी हल जोतना पड़ता है जो उनकी दृष्टि में कारीगरी से कम निन्दनीय काम है। हिन्दू राजपूत धर्म परिवर्तन के बाद पठानों में शुमार हुए, क्योंकि उनके व्यवहार में भी वही आक्रमकता पायी जाती है। किन्तु, यह 'मायी' बिरादरी के पक्ष में दिखता है जो धर्म परिवर्तन से पहले राजपूत बिरादरी में थे। श्रमिक वर्ग, जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ, शेख उपाधि धारण करते हैं। यद्यपि अरब नस्ल के शेखों से उनका क्रम काफी छोटा होता है, किन्तु उनके दावे को प्रायः स्वीकार किया जाता है। इस वर्ग में धनी कृषक कभी-कभी गरीब मुगलों एवं पठानों से विवाह संबंध भी कायम कर लेते हैं और साथ खाते भी हैं। धर्म परिवर्तन के बाद व्यवसायी वर्ग भी शेख कहलाते हैं, जाति के नियमों का पूरी कड़ाई से पालन करते हैं और ऊँची जाति के लोगों से मिलने पर भी मेल-जोल नहीं रखते।''[14]

उन्होंने ऐसी जातियों की सूची दी है जिन्हें निम्न जाति का समझा जाता था। इनमें से कई उस समूह में आते हैं जिन्हें दलित कहा जाता हैं[15] उन्हीं के शब्दों में- ''निम्नलिखित बिरादरी इस आधार पर मेल-जोल से वंचित रखे जाते हैं-

(1) जोलाहा या बुनकर-17,700 परिवार, (2) पटवार-270 परिवार, (3) दर्जी-1,200 परिवार, (4) चूड़ीसाज-320 परिवार, (5) डफाली-360 परिवार। ये प्रायः दर्जी, पटवार और चूड़ीसाज के साथ खान-पान रखते हैं और विवाह संबंध भी कायम करते हैं, क्योंकि वस्तुतः ये इन्हीं तीन बिरादरी के सदस्य होते हैं। (6) धारी मीरासी-120 परिवार। पश्चिमी भारत में इन्हें डोमा-डोमी कहा जाता है, (7) पंवरिया-80 घर, (8) कंगचनी (वेश्या)-800 घर, (9) भाट-56 परिवार, (10) भांगर-4 घर, (11) कलावंत-70 परिवार, (12) कंजड़ा-2000 परिवार, (13) भटियारा-350 परिवार, (14) कलाल-2,300 परिवार, (15) भंगेरा-3 परिवार, (16) हलवाई-2 परिवार, (17) नानबाई-80 परिवार, (18) चिक-400 परिवार, (19) कसाब-450 परिवार, (20) हजाम-450 परिवार, (21) धोबी-250 परिवार, (22) मिरशिकार-130 परिवार, (23) तेली-8 परिवार, (24) कुम्हार-2 परिवार, (25) कलैगर-11 घर, (26) नैचाबंद-20 घर, (27) मोची-60 परिवार, (28) नालबंद-12 परिवार, (29) तीर-धनुष बनाने वाले-पेशा अलग होने के बावजूद एक ही जाति के हैं-40 परिवार, (30) कागज बनाने वाले-110 परिवार, (31)

सिकुलगुर-200 परिवार, (32) धुनिया-2,100 परिवार, (33) रंगरेज-700 परिवार। ये ही लोग साबुन भी बनाते हैं। (34) कालीनबफ-70 परिवार, (35) माली-3 घर, (36) सुक्का-70 परिवार, बहुत से जोलाहे इस काम (पानी ढोने) को करते हैं, किन्तु सुक्का के साथ विवाह संबंध नहीं रखते। (37) खाकरोब-200 घर, (38) मौलाजादा-2850 परिवार।

'दि इम्पीरियल गजेटियर' में 1881 ई. की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम 25 वर्षों में पटना डिवीजन की जनसंख्या का उल्लेख है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हिन्दू की जातियों का कोई उल्लेख नहीं है। उन्हें सुन्नी, शिया, वहाबी एवं अन्य धार्मिक वर्गों में ही दिखाया गया हैं। मैंने 1911 ई. की जनगणना रिपोर्ट देखी थी। इसमें बिहार के मुस्लिम समुदाय की जातियों जैसे-जोलाहा, धुनिया, कलाल इत्यादि के बारे में कुछ जानकारियाँ हैं। इन्हें निम्न जाति माना गया है। किन्तु 'दलित' एवं 'पिछड़े' का विभाजन फिर भी अस्पष्ट ही है।

मुस्लिम समाज में 'दलित' की अवधारणा काफी नयी है। यह हिन्दू समाज की कुछ जातियों से मुस्लिम समुदाय की कुछ जातियों की समानता पर अधिक आधारित है। इस प्रकार मुसलमान भंगी को दलित पहचान मिल जाती है। किन्तु, यहाँ पर ध्यान देने की जरूरत है कि हिन्दू समाज में दलितों की पहचान सदियों से कायम है। मुसलमान दलितों के साथ ऐसा नहीं है। उन्हें सिर्फ हिन्दू दलितों के समरूप देखने से काम नहीं चलेगा।

स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में बिहार में निम्न मुस्लिम जातियों, विशेषकर जोलाहों (उस समय मोमिन कहे जाते थे) और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में काफी घनिष्ट संबंध बना था और इस ध्रुवीकरण ने उच्च वर्गीय मुसलमानों की प्रभुत्ववाली मुस्लिम लीग के प्रभाव को परे ही रखा था। स्वतंत्र्योत्तर भारत के प्रारंभिक दशकों में भी 'मोमिन' की प्रमुख भूमिका रही थी।

हाल के वर्षों में पशमांदा मुस्लिम महाज पिछड़े मुसलमानों के अधिकार की लड़ाई का अगुआ बनके उभरा है। महाज की महत्वपूर्ण उपलब्धि कुछ महत्वपूर्ण संस्थाओं में उच्च वर्ग की प्रमुखता को चुनौती है। वर्तमान में बिहार का मुस्लिम समाज जाति के प्रश्न पर एक शुद्धीकरण की प्रक्रिया से गुजरता प्रतीत होता है। किन्तु, समग्र तौर पर दलित मुस्लिम प्रमुखता से उभरते नहीं दिखते। वस्तुत: उनकी स्पष्ट पहचान ही नहीं बन पायी है और वे अपेक्षाकृत अधिक मुखर पिछड़े मुस्लिम के अनुसरण करते दिख पड़ते हैं।

इन निम्न जातियों, जिनमें से बहुत अभी दलित में शुमार की जाती हैं, के प्रति स्वयं मुसलमानों का व्यवहार कैसा था, इसकी झलक 20वीं सदी के प्रारंभिक उर्दू साहित्य में मिलती है। मुझे स्मरण आता है, शाद अजीमाबादी का 'नक्श-ए-पैदार' और बदरूल हसन का 'यादगार-ए-रोजगार'। दोनों पटना सिटी के मशहूर व्यक्ति थे और दोनों 'अशरफ' थे। उन्होंन पटना शहर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवरण तैयार किया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने सिर्फ उच्च वर्ग एवं जाति के लोगों का ही उल्लेख किया है। निम्न वर्ग या जाति के लोगों का उल्लेख कहीं-कहीं सरसरी तौर पर हुआ है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष कारीगर, राजमिस्त्री, शिल्पकार या रसोइये की तारीफ उसकी कुशलता के लिए की गई है। अन्यथा इस तबके का उल्लेख सामान्यत: अवहेलना के शब्दों में ही किया गया है।[16]

बिहार में दलित मुसलमानों की पहचान में बुकानन की सूची सहायक सिद्ध हो सकती है। इस कार्य में उन वर्षों की जनगणना सूची, जिसमें जाति का उल्लेख किया गया है, भी सहायक सिद्ध हो सकती है। इससे पहले कि हम दलितों को राजनीतिक, सामाजिक मुख्यधारा में लाने एवं उनके विकास के अवसर बढ़ाने के लिए किसी योजना को अंतिम रूप दें, ज्यादा अर्थपूर्ण काम यह होगा

कि पहले हम मुस्लिम समाज में दलितों की पहचान अच्छी तरह से करें, फिर उनकी समस्याओं, उनके हाशिये पर पहुँचने की प्रक्रिया, उनके राजनीतिक अधिकारों के अपहरण, शिक्षा का अभाव एवं उनकी अन्य सुविधाओं पर विचार करें।

मुस्लिम समाज में 'दलित' की अवधारणा काफी नयी है। यह हिन्दू समाज की कुछ जातियों से मुस्लिम समुदाय की कुछ जातियों की समानता पर अधिक आधारित है। इस प्रकार मुसलमान भंगी को दलित पहचान मिल जाती है। किन्तु, यहाँ पर ध्यान देने की जरूरत है कि हिन्दू समाज में दलितों की पहचान सदियों से कायम है। मुसलमान दलितों के साथ ऐसा नहीं है। उन्हें सिर्फ हिन्दू दलितों के समरूप देखने से काम नहीं चलेगा। इसलिए उनकी पहचान अलग तरीके से करने की जरूरत है। दूसरी बात कि उपनिवेश-पूर्व और औपनिवेशिक काल में निम्न जाति के मुसलमानों का हाशिये पर पहुँचना मूलतः एक सामाजिक घटनाक्रम था। आज इसका रूप बहुआयामी हो गया है- राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक इत्यादि। चुनावी राजनीति ने इस समस्या को पेचीदा स्वरूप दिया है। इस नई चुनौती से निबटने के लिए कार्य योजना की आवश्यकता है। यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि कमजोर लोग बहुधा भेदभाव का शिकार होते ही हैं और जो लोग कमजोर वर्ग में भी कमजोर हैं वे और भी अधिक भेदभाव का शिकार होते हैं। यह कहते वक्त मेरे ध्यान में दलित मुसलमान औरतें हैं। उनका कष्ट और भी ज्यादा है। उनके लिए क्या किया जा सकता है? उनके लिए हम विशेष कार्य योजना बनाएँ या फिर प्रतीक्षा करें कि कब उनके पक्ष में माहौल बनता है? ये कुछ प्रश्न हैं जिन पर ध्यान देने की जरूरत है।

सबसे महत्वपूर्ण बात है कार्यनीति का निर्धारण। इस प्रजातांत्रिक समाज में, जहाँ संख्या की महत्ता ज्यादा होती है, हाशिये पर पहुँचे विभिन्न वर्गों की समस्याओं पर अलग-अलग विचार करना अच्छा होगा या कि एक वृहत् एकता कायम कर एक साझा नेतृत्व में इस आंदोलन को सफलता के सोपान पर लाना?

संदर्भ

1. मोहम्मद हबीब के अंग्रेजी उद्धरण के अनुसार। *पोलिटिक्स एण्ड सोसायटी ड्यूरिंग द अर्ली मेडिएवल पीरियड*, भाग दो, संपादक के. ए. निजामी, नई दिल्ली 1981, पृष्ठ-1 ।
2. अलबरूनी का भारत (अनुवाद एवं संपादन) सचौ (पुनर्मुद्रण), नई दिल्ली, 1964 । संक्षिप्त संस्करण के लिए *'इण्डिया बाई अलबरूनी'* (संपादक कयूमुद्दीन अहमद), एन.बी.टी., नई दिल्ली, 1983 ।
3. अहमद, उपर्युक्त जैसा, पृष्ठ-45 ।
4. वही
5. देखें इलियट एण्ड डावसन, भाग-1 ।
6. अहमद, उपर्युक्त जैसा, पृष्ठ-46 ।
7. सिन्ध में अरबों का शासन छोटा एवं गैर महत्वपूर्ण होने के कारण विचार नहीं किया गया है।
8. नदफ या धुनिया मुसलमानों की निम्न जाति है।
9. मुस्लिम समुदाय की दूसरी सबसे बड़ी जाति शेख़ है।
10. सैयद सर्वोच्च जाति है।
11. के.एम. अशरफ़, लाइफ एण्ड कंडीशन्स ऑफ दि पीपल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1970, पृष्ठ-107।
12. आइन-ए-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद), भाग-1, पृष्ठ-2 ।
13. अधिक जानकारी के लिए देखें मेरा आलेख-*भक्त संतों का सामाजिक सरोकार*, सूचना समग्र, भाग-1, 1993 ।
14. फ्रांसिस एच. बुकानन, एन एकाउन्ट ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ बिहार एण्ड पटना इन 1811-12, पटना, पृष्ठ-310-312 ।
15. संगोष्ठी के पर्चे में उल्लिखित भटियारा, चिक, कसाब, दर्ज़ी, रंगरेज इत्यादि जातियों का उल्लेख बुकानन की सूची में मिलता है।
16. अधिक जानकारी के लिए देखें मेरी रचना– *पटना (अज़ीमाबाद) एट दि टर्न ऑफ दी प्रजेंट सेंचुरी*, पटना थ्रु दि एजेज, संपादक कयूमुद्दीन अहमद, पटना 1988, पृष्ठ-168 । ❑

प्रो. इम्तियाज़ अहमद

पटना विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक । मध्यकालीन भारतीय इतिहास में विशेषज्ञता। अनेक पुस्तकें एवं शोध-पत्र प्रकाशित एवं प्रशंसित।

अज्ञानकोष

■ आत्माराम कनिराम राठोड

(श्री आत्माराम कनिराम राठोड मराठी के जाने-माने लेखक, कवि और सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। उनका जन्म एक बंजारा परिवार में हुआ तथा 'ताँडा' में रहकर पले-बढ़े। इनकी कई रचनाएँ पुरस्कृत हुई हैं। 'ताँडा' नामक आत्मकथा का अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ है। 'अज्ञानकोष' की कहानियों का हिन्दी के पाठकों ने स्वागत किया है। वर्तमान युग की विसंगतियों पर मार्मिक कटाक्ष करनेवाली ये कहानियाँ सचमुच कभी हँसाने, सोच में डालने तो कभी रुलाने वाली साबित हुई हैं। इन कहानियों की चौथी व अन्तिम किस्त यहाँ दी जा रही है। —सं.)

29.
लकड़ी का सौदा

कांतिलाल और गोवर्धन जब गाजीभाई के आरा मशीन की दुकान पर आए तब मैं वहीं बैठा हुआ था। गणपत दर्जी की दुकान की तरह ही मेरा दूसरा ठिकाना गाजीभाई विश्वकर्मा की यह आरा मशीन की दुकान थी।

नगरपालिका का सदस्य रह चुका तरुण कांतिलाल लाचार भाव से बोला, ''जीजाजी! सात रुपए दो। हम दोनों आधी-आधी पी लेंगे। सुबह से कुछ नहीं मिला।''

''सूअर की औलादो''–गाजीभाई हेय भाव से बोला, ''यहाँ क्या बाप-दादाओं का खजाना रखा हुआ है। सुबह-सुबह आए पीने के लिए पैसे माँगने।''

बार-बार याचना करने पर भी गाजीभाई ने एक भी रुपया देने से इंकार कर दिया। निराश होकर दोनों मेरी तरफ देखते हुए बाहर निकल गए।

☆ ☆ ☆

आठ-दस दिन बाद एक दिन गोवर्धन तिवारी सायकिल से आया और सायकिल पर बैठे-बैठे ही एक पाँव जमीन पर टेकते हुए पूछा, ''जीजाजी! कांतिलाल आया था क्या?''

''सालों!'' गाजीभाई तुच्छता से बोला, ''यहाँ क्या कोठा है कि जो चाहे आ जाए?''

''अरे जीजाजीऽऽऽ–'' तिवारी दोस्ताने ढंग से बोला, ''अभी तो कोई अकाल नहीं पड़ा है। देखना किसी दिन तुम्हीं को कोठे पर बिठा देंगे।''

''साले ! रुक अभी तुझे बताता हूँ।'' गाजीभाई भड़के।

''छोड़ो जीजाजी वो कांति आए तो बता देना कि मैं उसे ढूँढ़ रहा हूँ।''

तिवारी चला गया।

थोड़ी देर बाद कांतिलाल प्रकट हुआ। उसने जल्दी-जल्दी से पूछा, ''जीजाजी! क्या गोवर्धन आया था?''

गाजीभाई उस तिवारी से ज्यादा इस कांतिलाल से दबता था। कहा, ''आया था साला...उधर (एक ओर इशारा करते हुए) को गया। तुझे ढूँढ़ रहा था।''

''गदहा है जीजाजी'' –कांति बोला, ''वो गदहा है। उसे यह भी नहीं मालूम कि किसको, कब, कहाँ ढूँढ़ना है। आए तो बता देना कि मैं खान साहब की आरा मशीन की दुकान पर हूँ।''

कांति के जाते ही तिवारी आ गया। अब वो पैदल आया था। उसको देखकर गाजीभाई ने कहा, ''वो तेरा

...कांति खान की दुकान पर गया है।''

''अरे साला! मुझे पहले ही समझ लेना चाहिए था। पर मैंने सोचा शायद वो इधर आया हो।''

''क्यों?'' –चिढ़ते हुए गाजीभाई ने पूछा।

''नहीं, क्या है कि वो लकड़ी बेचना है न कांति को...इसलिए।''–तिवारी अपना बोलना आधा छोड़ भागने को बेकरार था। गाजीभाई ने उसका हाथ पकड़ लिया। बड़े प्रेम से पूछा, ''लकड़ी! कौन सी, कैसी, किसकी लकड़ी?''

''अरे जीजाजी छोड़ो भी, वो कांतिलाल आपको नहीं देगा।'' –तिवारी ने कहा।

''अरे मगर क्यों नहीं देगा। है क्या वो लकड़ी ये तो बता।'' गाजीभाई ने लार गिराते हुए पूछा।

''जीजाजी, वो सेलू रोड के बगल में पटेल साहब के खेत में जो बबूल का पेड़ है, जोकि लगभग पाँच घन मीटर होगा, कांतिलाल को बेचने को दिया है। बस इतनी सी बात है।...'' –तिवारी ने फिर अपना कहना अधूरा छोड़ दिया। गाजीभाई के मुँह में पानी आने लगा। पाँच घनमीटर माल निकलनेवाला बबूल का पेड़ कितना घना होगा। वो सपनों में खो गया। कांतिलाल वह लकड़ी खान की दुकान में बेच देगा यह बात गाजी को पसन्द नहीं आ रही थी। उसने तिवारी से फिर कहा, ''देख भाई, तुम उठते-बैठते हो मेरे पास। दारू के पैसे भी मुझसे माँगते हो और लकड़ी बेंचते हो खान के पास। तुम्हें शरम नहीं आती।''

''आती है जीजाजी''–तिवारी रुक-रुककर बोलने लगा। –''मगर वो कांति कह रहा था कि जीजाजी से सौदा नहीं कर सकते। ज्यादा झिक-झिक नहीं कर सकते। आखिर आप हमारे अपने जो ठहरे। इसलिए वो खान के पास गया है।''

''अरे सालों–'' गाजीभाई अपने बोलने में मिस्री घोलते हुए बोला–''तुम लोगों को मैं गालियाँ देता हूँ अपना समझ के। तू ऐसा कर कांति को ले आ। हम आपस में, तुम जैसा कहोगे वैसे ही तय कर लेंगे।''

''ओ जीजाजी मेरे पास सायकिल नहीं है। सुबह से पेट में कुछ भी नहीं। साला खान की दुकान इतनी दूर है, कैसे जाऊँ?''–तिवारी ने तकरार किया।

''देख तिवारी! वो लकड़ी अपने यहाँ आएगी, समझा। तू कांति को ले आ, पटा के ले आ। फिर तेरे गंगाजल की...।'' –गाजी भाई ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''ना, ना, ना, जीजाजी। फिर की फिर। पैसा मिलने पर तो कांति भी पिलाएगा। पर अभी कुछ करो नहीं तो मैं चला।''–तिवारी ने धमकी दी।

''हाँ, हाँ, तिवारी! तू इसमें से (दस का नोट पकड़ाते हुए) पाँच की मार के आ। तब तक मैं कोई सायकिल देखता हूँ तेरे लिए।''

तिवारी झटपट निकल गया।

जब तिवारी वापस आया तो उसके चेहरे पर संतोष का भाव था और वह खुश भी नजर आ रहा था। उसने आते ही कहा–''जीजाजी! साला उसके पास छुट्टा नहीं था, दस की पी ली। माफ करना।''

''कर दी न औकातवाली बात'' –पुरानी आदत के अनुसार डाँटते हुए गाजीभाई बोला। फिर उसने अपनी जीभ काटी। ''अबे सुबह-सुबह इतनी नहीं लेनी चाहिए, कुछ खा-पी के लिया कर। अच्छा ये बता कांति की उस लकड़ी का क्या हुआ?''

''जीजाजी''– तिवारी अपने आपको संभालते हुए बोला–''वो लकड़ी नहीं, सोना है सोना। कांति ने पटेल के बच्चों को जूते-चप्पल बनवाकर दिए थे। पैसे के बदले में पटेल ने वो पेड़ दिए हैं। जीजाजी, कांति ने कटाई में 190 रुपए नकद लगाया है।''

तिवारी के फेंके हुए मोहजाल में गाजीभाई अटकने लगा।

गाजी ने पूछा–''तुझे मालूम है वो लकड़ी कांति कितने में बेच रहा है?''

''नहीं जीजाजी'' तिवारी बोला–''कांति कितने में बेच रहा है, ये मुझे मालूम नहीं मगर खान कितने में ले रहा है, ये मुझे मालूम है।''

''कितने में?''–गाजीभाई ने उत्सुकता से पूछा।

''वो बोल रहा था लकड़ी के 850 रुपए, कटाई के 190 रुपए और मेरे 75 रुपए।''–तिवारी ने कहा।

''तेरे?''–मुँह का पानी निगलते हुए गाजीभाई गरजे।–''तेरे कैसे?''

"जीजाजी"–तिवारी बहकते हुए बोला–"कटाईवालों के साथ तीन दिन मैं था। उसकी मजदूरी कौन देगा? मैंने कांति को पहले ही कह दिया है कि तू चाहे लकड़ी मुफ्त में दे दे। अपनी मजदूरी पूरे डेढ़ सौ मैं लूँगा।

"हाँ बराबर।" –गाजीभाई ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

"तुझे पूरे डेढ़ सौ मिलना ही चाहिए। मिलेंगे भी। अब तू ऐसा कर, कांति को ले आ।"

"किसलिए?" –तिवारी ने पूछा।"

"अरे तुम तो अपने आदमी हो। लकड़ी मुझे मिलेगी तो तुम्हें दो पैसा ज्यादा ही दूँगा। और कितनी बार तो मुफ्त में पीने को देता रहता हूँ।" गाजीभाई एहसानों की याद दिलाते हुए बोला।

गाजी की नजर में पाँच घन मीटर लकड़ी हजार-बारह सौ रुपए में मिल जाना वाजिब था। पर यह तो कौड़ी के भाव मिलने वाला सोना था। वो किसी भी हालत में पाना चाहता था। गाजीभाई ने झटपट रिक्शा तय किया और रिक्शे वाले से बोला –"इसको छोड़कर खाली हाथ लौटा तो एक धेला भी नहीं मिलेगा।" और तिवारी के तरफ मुड़ते हुए बोला–"कांति को लेकर जल्दी आ। नाश्ते के साथ और पचास की पिलाता हूँ।

रिक्शेवाले ने पैडल मारा। उसे मन ही मन अपना किराया डूबने का डर था।

थोड़ी देर बाद कांति और तिवारी आए। गाजीभाई ने बड़े आदर-भाव से उनका स्वागत किया। कांति का हाथ कुछ काँप रहा था। गाजीभाई ने यह देख लिया और प्रेम से पूछा–"क्यों कांति, ठीक तो हो।"

"कैसे ठीक रहेगा।"–तिवारी बीच में बोल पड़ा। –"सुबह से एक घूँट चाय भी नहीं गई इसके पेट में।" वह मुट्ठी बाँध के अँगूठा अपने होंठ की तरफ ले जाते हुए बोला।

"तो पहले क्यों नहीं बताया?" –गाजीभाई अपनत्व भाव से बोला और शर्ट में से बनियान में हाथ डालकर बीस का नोट निकाला और तिवारी की ओर फेंक दिया।

फिर कांतिलाल ने वहीं तिवारी की लाई हुई बोतल का मान रखा और सौदे की शुरुआत की।

हाँ-ना करते हुए सौदा-नौ सौ रुपए में तय हुआ। तिवारी बड़ी उत्सुकता भरी नजरों से गाजीभाई की तरफ देख रहा था। गाजीभाई ने सिर हिलाकर उसको 75 रुपए देने का कुबूल कर लिया। जल्दी ही गाजी-भाई ट्रैक्टर लेकर आया और वे तीनों सेलू रोड की तरफ निकल पड़े। बबूल का वो इतना बड़ा पेड़ लाकर उन्होंने मशीन पर डाल दिया। शाम को गाजीभाई ने ईमानदारी से कांति और तिवारी को पैसे दे दिए। व्यवहार पूरा हुआ।

☆ ☆ ☆

तीन चार दिन बाद तिवारी आया और कहने लगा–"जीजाजी वो लकड़ी तुमने काट डाली?"

"अभी नहीं, कल-परसों काटूँगा।" –अब गाजीभाई अपनी औकात पर आ गया था।

"ना, ना, ना। अब मत काटना।" –तिवारी ने कहा।

"क्यों?"–गाजीभाई ने डाँट कर पूछा।

"जीजाजी कल मैं सेलू रोड गया था" –तिवारी बोला।

"तो?" –गाजीभाई ने आँखें निकाली।

"पटेल मिला था।"

"तो?" –गाजीभाई ने फिर से डाँटा।

"वो कहता है मेरी लकड़ी चोरी हो गयी है। गाजीभाई अब सब गड़बड़ हो गया है। तुम्हें अब तक काट डालना चाहिए था।"

"पर-पर..." –गाजीभाई घबराते हुए बोला –"तू तो कहता था लकड़ी पटेल के लड़के ने कांति को दिया था।"

"मैंने पटेल को कहा था"–तिवारी ने कहा।

"क्या कहा था?"–गाजीभाई ने पूछा।

"कहा था लड़के से पूछकर देखो। हो सकता है उसने किसी को दे दिया हो।" –तिवारी ने कहा।

"तो क्या बोला पटेल?"–गाजीभाई ने पूछा।

"बोला लड़के से क्यों पूछूँ। लकड़ी उसकी थोड़े ही है। –तिवारी ने कहा।"

"फिर?"–गाजीभाई घबराया हुआ बोला।

"फिर क्या मैं वहाँ से भाग निकला।"–तिवारी ने कहा।

"अब?"– गाजीभाई ने डरे हुए स्वर में पूछा।

"अब यहाँ से भागता हूँ।" –तिवारी बोलकर

चलने लगा।

गाजीभाई ने उसके पैर पकड़ लिए। गंभीर विचार-विनिमय के बाद लकड़ी जहाँ। से लाया था वहीं ले जाकर डालने की बात तय हुई। तिवारी के पास एक भी पैसा नहीं था। आखिर 75 रुपए में से तिवारी के पास क्या बचने वाले थे। तिवारी ट्रैक्टर लाया। ट्रैक्टर का किराया गाजीभाई ने दिया। चोरी की बबूल की लकड़ी फिर से वहीं ले जाकर डालने की हिम्मत गाजीभाई में नहीं थी। प्रेमवश तिवारी ट्रैक्टर पर बैठा। रात ही रात में उस बबूल की लकड़ी के कितने टुकड़े हुए यह खान साहब की आरा मशीन की दुकान के कामगार भी नहीं गिन सके होंगे।

☆ ☆ ☆

कभी गाजीभाई की दुकान से ली गई सागवान की बनी आलमारी आम की लकड़ी निकली थी। कांति का किस्सा सुनने के बाद अज्ञानकोश ने कहा–"दुष्टों को शिक्षा देने वाले कांति और तिवारी जैसे लोग होते हैं। इसलिए तो हम सब हयात हैं यानी जिंदा हैं।

✤

30.
भाया का सवाल

"बापूश्री" घर में प्रवेश करते ही भाया चिल्लाया।

वो ऐसे चिल्लाता है कि मैं घबरा जाता हूँ। वो कब, कौन सा सवाल पूछ लेगा पता नहीं।

"दो सवाल हैं।" –उसने कहा।

"कैसा सवाल?" मैंने डपटते हुए पूछा।

सामने अज्ञानकोश खड़ी थी।

"जवाब दोगे।" –भाया ने पूछा।

"पहले सवाल कर।" –मैंने कहा।

"पहला सवाल–दुनिया में आदमी सयाना है या जानवर?"– भाया ने पूछा।

"आदमी। क्योंकि उसके पास बुद्धि है।"

"बुद्धि होगी बापू। लेकिन अक्ल का क्या।" –भाया ने कहा।

"तुझे क्या लगता है? क्या आदमी से जानवर तुझे ज्यादा सयाने लगते हैं?"

"हाँ"–उसने दृढ़विश्वास के साथ कहा।

"क्यों रे आज तुझे ननिहाल पर प्यार आ रहा है। क्या वजह है।"– मैंने सवाल-जवाब को खत्म करने के इरादे से कहा।

"मेरे मायके को इसमें लाना नहीं।"–अज्ञानकोश ने आवेश में कहा।

"बापूश्री, प्राणी आदमी से कम बुद्धिवाले होते हैं न।"– माँ की तरफ देखते हुए भाया ने पूछा।

"पक्का"–मैंने कहा।

"पर बापू शेर, बाघ ये मांसाहारी प्राणी कच्चा मांस खाते हैं। बुद्धिहीन होकर भी उनको कभी अजीर्ण हुआ ऐसा किसी ने कभी देखा-सुना क्या और आदमी, रहने दो बापू, क्या खाएगा और क्या उलट देगा, कौन कह सकता है।"

"भाया"–मैंने डपटते हुए कहा– "स्कूल की पढ़ाई छोड़कर गलत सवालों में दिमाग खपाना नहीं चाहिए।"

"ठीक है बापूश्री"–भाया शांत भाव से बोला।

मैंने नाटक किया कि उसने नाटक किया, किसको मालूम।

भाया ने दूसरा सवाल पूछा–"अब एक स्कूल में का सवाल। पानीपत के तीसरे युद्ध में कौन हारा?"

"गदहे! सारी बातों में तो होशियार बनता है। परन्तु जो सभी जानते हैं वह भी तुम्हें नहीं मालूम?"–मैंने उसको डाँटा।

"जवाब मालूम हो बापू तो बताओ"–भाया ने कहा।

"गदहे! पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठे हारे थे।"– मैंने कहा।

"वो तो मुझे भी मालूम है बापू। लेकिन वो गलत नहीं है?"–भाया ने पूछा।

''गलत है, कैसे?''– मैं चकरा गया।

''ऐसा है बापूश्री जब 'अटक' के उस पार झंडे गए तो उन्हें पेशवा ले गए और जब पानीपत में हार गए तो मराठे हार गए। यानी जीते तो पेशवा और हारे तो मराठे। हैं न।''

मैं निरुत्तर हो गया था और लग रहा था मेरे दिमाग पर कोई उल्का गिर पड़ा हो और लोनार के सरोवर के जैसा मेरे दिमाग में बह रहा है। सिर्फ एक गड्ढा ही नहीं उसमें से लावा निकल रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि उसको क्या जवाब दूँ। मैं सीधा फ्रिज के पास गया और थोड़ा-सा 'रम' निकालने लगा।

✤

31.
खन काऊ कि धन काऊ

किसी गाँव में एक आदमी रहता था। उसका कोई आगा-पीछा नहीं था। उसकी मामूली सी खेती थी और एक जोड़ी बैल था। उसका कोई नजदीकी रिश्तेदार भी नहीं था। वो अपना आटा-दाल पड़ोस की एक बुढ़िया को दे देता था। बुढ़िया उसका खाना पका देती थी।

रोज एक ही तरह का खाते-खाते वह ऊब गया था। एक दिन उसने बुढ़िया से कहा–''दादी, रोज-रोज चटनी-रोटी, सब्जी-रोटी खा-खाकर मैं तंग आ गया हूँ। दूध-दही-घी खाने का मन कर रहा है। इसलिए मैं एक भैंस ले देता हूँ। तू करेगी उसका सब कुछ? दूध दुहना, दही बनाना।''

बुढ़िया ने कहा– ''देख बेटा! मैं अब बूढ़ी हो गई। मुझसे तुम्हारा ही काम नहीं होता तो दही का क्या कर सकती हूँ। इसके बजाय ऐसा कर कि तू अब शादी कर ले। तेरी पत्नी आएगी, तेरा भी सब कुछ करेगी और भैंस का भी।''

उसने बुढ़िया का कहना सुन लिया, मान लिया। उसने शादी कर ली। फिर वह एक गाभिन भैंस ले आया। कुछ दिन के बाद वो जनी। वह आदमी बहुत खुश हुआ। अपनी दिनचर्या में वह सबेरे-सबेरे दूध निकालता और फिर खेत में चला जाता। वापस आकर वह पुनः दूध निकालता था। उसकी पत्नी बड़ी खराब स्वभाव की थी वह भुक्खड़ भी थी। वो दही मथती थी। उसमें से मक्खन निकालती थी। फिर उसके तीन गोले बनाती थी और दीवार को पैर लगा कर बोलती थी–''बोल दे दीवार–खन काऊ कि धन काऊ''– फिर इधर-उधर देखकर बोलती थी–''धन काऊ, क्या देखती है इधर-उधर।'' और ऐसा कहके वो पूरा मक्खन गटक जाती थी। आदमी बेचारा दिनभर का थका-हारा शाम को घर आता था और खाने को बैठता था तब थाली में छाछ और रोटी देखकर मायूस हो जाता था। फिर वह पूछता–''क्या आज भी छाछ और रोटी?''

''ले आए हो ऐसी भैंस। दूध में दही डाला की छाछ ही हो जाता है। मक्खन आता ही नहीं।'' – वह उलट कर जवाब देती।

यही क्रम चलता रहता। वो छाछ-रोटी खा-खाकर सूख गया।

एक दिन बुढ़िया ने इसका कारण पूछा। वह कहने लगा–''क्या करूं दादी माँ, यह भैंस ही ऐसी निकली। उसके दूध का दही होता ही नहीं। छाछ हो जाता है।''

इसमें जरूर कुछ गड़बड़ है। दही और मक्खन कहीं तो जा रहा है। उसने नजर रखी, खोज की और सब कुछ समझ लिया।

बुढ़िया ने उस आदमी को सविस्तार बता दिया।

दूसरे दिन वो खेत में जाने को निकला। जाते-जाते उसने अपनी पत्नी से कहा–''रोटी लेकर जरा खेत पर जल्दी आ जाना''–ऐसा कह वह छुप कर बैठ गया।

उसने बुढ़िया के कहे अनुसार सब कुछ चुपचाप देखा। देखने के बाद वह जल्दी-जल्दी चलकर खेत में पहुँच गया। उसकी पत्नी खेत पर आई। छाँव के लिए उस आदमी ने खेत में मचान बना रखा था। उसने हल रोका और पत्नी के पास आया। फिर उसने अपनी पत्नी

को जल्दी-जल्दी, जगह-जगह कुमकुम लगाया।

उसकी पत्नी ने पूछा-"यह क्या कर रहे हो?"

"आज तेरी पूजा करनी है।" उसने कहा- "यह नई पद्धति की पूजा है। मेरे गुरु ने मुझे बताई है।"

पागल दिखनेवाले अपने आदमी पर आज और भी पागलपन सवार है ऐसा सोचकर उसने उसकी पूजा को स्वीकार किया। आखिर में उसने उसके हाथ-पैर बाँध दिए। उसकी पत्नी ने फिर पूछा-"तुम ये क्या कर रहे हो?"

उसने कहा-"यह पूजा हाथ-पैर बाँध कर ही होती है। फिर उसने उसको मचान पर लटका दिया। पास में ही इमली का एक पेड़ था। वो आदमी जाकर उसमें से इमली की अच्छी-अच्छी छड़ियाँ ले आया और फिर पूछने लगा-"मचान! कर घर का बयान, खन काऊ कि धन काऊ।"

वह खुद से ही पूछता था और खुद से ही बोलता था- "धन काऊ क्या देखता है आगे-पीछे"-और इमली की छड़ियों से सपा-सप उसको मारता था।

☆ ☆ ☆

मैंने कहानी खत्म की।

भाया ने पूछा-"आगे क्या हुआ?'

"आगे क्या होने वाला है। उसकी पत्नी ने उससे क्षमा माँगी और फिर से ऐसा न करने का वादा किया और न ही उसने फिर कभी दीवार से बात की। दोनों को मक्खन और दही मिलने लगा।"-मैंने जवाब दिया।

"बापूश्री!"-भाया ने पूछा-"यदि तुम्हारे पास भी खेत रहता तो क्या तुम भी मचान खड़ा करते?"

मैं क्या बोलनेवाला था।

✤

32.
अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका

जिन्दगी में बहुत कुछ देखने-सुनने को मिला। क्या-क्या सुनाऊँ।

अज्ञानकोश की एक सहेली अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका है। उसके पति के पास भी उपाधियाँ हैं। मगर बदकिस्मती से उसे नौकरी नहीं मिली।। उसकी पत्नी ने उसे एक भैंस दिला दिया तथा एक स्कूटर भी खरीद दिया। बेचारा स्कूटर से दूध बाँटता रहता है। भैंस का चारा-पानी वही करता है। उसकी पत्नी अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका जो है। अर्थार्जन, बचत उन दोनों के खून में समा गया?

☆ ☆ ☆

परसों वो आदमी दिखा। सच पूछो तो उसे देखते ही मुझे हँसी आ गई। लेकिन मैंने खुद को रोका। बेचारा घोड़ी पर भैंस का चारा ला रहा था। नमस्कार कर मैं आगे चल पड़ा।

घर आते ही मैंने भाग्यवान से पूछा- "क्यों जी, वो तुम्हारी सहेली के पास स्कूटर था न!"

"हाँ था, बेच दिया उन्होंने।"

"क्यों, पुराना हो गया था?"

"नहीं जी, वो मेरी सहेली इतनी होशियार है, व्यवहार समझती है वो।"

"समझेगी ही भाई। अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका जो है।"

"इतना ही नहीं उसका पति भी उसके आधे शब्दों में रहता है। 'स' बोलो तो 'सब्जी' समझ जाता है।"

"पति का आधे शब्दों में रहना और घोड़ी का क्या संबंध?"

"नहीं जी। रास्ता चलते मेरी सहेली को एक घोड़ी की नई नाल मिल गई थी। अब मिली हुई चीज का उपयोग होना ही चाहिए न। इसलिए उसने स्कूटर बेच दिया और घोड़ी ले लिया।"

"सिर्फ नाल मिली इसलिए।"

"हाँ, हाँ, नाल मिली इसलिए। मेरी सहेली विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सलाहकार समिति की सदस्या भी है।" -उसने अभिमान से कहा।

अज्ञानकोश ने कोई संदेश देने के लिए उसके घर

की तरफ मुझे भेजा था। दरवाजा खुला था। पति-पत्नी दोनों गंभीरता से बातें कर रहे थे।

प्राध्यापिका अपने पति से बोल रही थी–''देखो जी! चार-चार भैंस का चारा तुम घोड़ी की पीठ पर लाद कर लाते हो। वो बेचारा भूखा जानवर कितना बोझ सहेगा।''

पति ने पूछा–''तो क्या मैं पैदल आया करूँ घोड़ी के साथ।''

''छिः, छिः मैं ये कैसे कहूँगी आपको पैदल आने के लिए। आ तो जाओ घोड़ी की पीठ पर बैठकर। मगर वो चारा है न, घास का गठ्ठर, उसे जरा अपने सिर पर ले लिया करो। इतना ही उस बेचारे को आराम मिलेगा।''–अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका बोल रही थी।

✤

33.
बड़े-बूढ़ों का पेट

उस दिन मैं कहीं जा रहा था। मैं बस में चढ़ा। खिड़की के पास जगह भी मिल गई। इतने में दो स्कूली बच्चे मेरे पास आकर बैठ गए। मेरे तरफ का 14 साल का था, बाजू का 12 साल का। मुझे जरा ठीक लगा। सफर में बोलनेवाले पड़ोसी मिल गए तो बड़ी दिक्कत होती है। कान पक जाता है। पास का लड़का बोला–''दादाजी, तुम जरा इधर बैठो न, खिड़की के पास बैठने में मजा आता है।''

मैंने चौंकते हुए उससे कहा–''देखो बेटा, मैं बूढ़ा आदमी हूँ। तम्बाकू खाता हूँ। मुझे थूकना पड़ता है। मुझे यहीं बैठने दो।''

कंडक्टर चढ़ा। ऐसे में 12 साल का बंटिया बोला–''पिंटिया तुम्हें उल्टी आए न तो खिड़की की तरफ करना। मेरी तरफ नहीं करना।''

बगलवाला अगर उल्टी करनेवाला हो तो मुझे पहले ही मिचली आने लगती है। मैं झट से उठा और दूसरी सीट पर बैठा। खिड़की चली गई।

गाड़ी चली। अगले स्टाप पर गाड़ी बहुत सारी खाली हो गई। वो लड़के खीं-खीं हँस रहे थे। मैंने सोचा जाने दो बचपना है हँसेंगे ही। मैंने आँखें मींच लीं और अपना बचपना याद करने लगा।

बंटिया और पिंट्या ने सोचा मैं सो गया हूँ। पर वास्तव में मैं जाग रहा था।

''देख बंटिया यह ठीक नहीं, ये दादाजी अच्छे हैं, इनको ऐसा कहना ठीक नहीं था।''

''अबे हट'' बंटिया ने कहा–''सभी बड़े-बूढ़े आदमियों को हवाई जहाज से बगैर हवाई छतरी के जमीन पर फेंक देना चाहिए।''

''वैसा नहीं रे।'' –पिंट्या ने वकीली की–''मेरी मम्मी कहती हैं बड़ों का आदर करना चाहिए।

''किस जमाने की है रे तेरी मम्मी, आँय।''–बंटिया ने जोरदार सवाल किया।–''आचार्य को बड़ा समझकर अँगूठा देनेवाले एकलव्य के जमाने की, कि शिवाजी और संभाजी में फर्क न समझनेवाली जीजाबाई के जमाने की।''

''वैसा नहीं रे।''–पिंट्या अपनी माँ के ऊपर आनेवाली तोहमत को टालते हुए बोला–''अपने से बड़े लोगों का, बड़े-बूढ़ों का आदर करना चाहिए, ऐसा सब लोग कहते हैं।''

''वो सब मूर्ख हैं।''–बंटी ने कहा।

''वो कैसे?'–पिंट्या ने पूछा।

''किसी को कैसे यह समझ नहीं आता कि ये बड़े-बूढ़े चोर होते हैं।''–बंटी ने कहा।

''लेकिन वो कैसे रे?'' पिंट्या ने फिर पूछा।

''कैसे यानी... कारगिल को निगलने की कोशिश करने वाला नवाज शरीफ क्या युवक था।''–बंटी ने जवाब दिया।

''वो सही है लेकिन...''

''लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। ये सब बड़े-बूढ़े क्या खाएँगे, क्या पिएँगे, क्या मुँह लगाएँगे, इसका कुछ भी पता नहीं।''–बंटी ने कहा।

''और किसके बारे में बता रहा है तू?'' पिंट्या ने पूछा।

''किसके बारे में बोलूँ। बंटिया ने कहा–''वो साला

सद्दाम हुसैन, कभी-कभी गोले खाता है, कभी-कभी अंगारे खाता है, कभी बमबारी खाता है। सब बड़े-बूढ़े वैसे ही होते हैं।''

''हाँ-हाँ।'' पिंट्या ने दुहरा दिया।

''और वो अमेरिका का बिल क्लिंटन बड़ा-बूढ़ा है कि नहीं।''

''है लेकिन उसका क्या?''

''क्या यानी... उसने तो पूरी दुनिया की शांति ही खा डाली।''

''वो सब परदेश की बात हो गई यार। अपने भारत के बड़े-बूढ़ों का उनसे क्या संबंध?''

''भारत की बोलता है-'' बंटी ने फिर से विद्वेश में कहा- ''वो विरप्पन कौन है? है कि नहीं बड़ा-बूढ़ा।''

''फोटो देखा है यार अखबार में उसका। लगता तो बड़ा-बूढ़ा ही है।''-पिंट्या ने कहा।

''फिर वो कभी वन अधिकारी को खाता है, कभी पुलिस अधिकारी को खाता है। कभी डॉक्टर को खाता है, कभी एक्टर को खाता है और ऊपर से चंदन का रस पीता है''-बंटी ने कहा।

''ये चन्दन रस देवलोक के सोमरस के जैसा होता है क्या रे?''-पिंट्या ने उत्सुकता से पूछा।

''होता होगा, नहीं भी होता होगा।''- बंटी ने अनिश्चितता से कहा-''क्योंकि देव को अमरत्व मिलता है वो सोमरस से नहीं, अमृत से। लेकिन इस विरप्पन को चन्दन रस से भारत में अमरत्व मिल गया है। वो बड़ा-बूढ़ा है इस बात पर शोध की जरूरत है''

''बड़े बूढ़े-इतने बदमाश होते हैं- पिंट्या ने पूछा।

''होते हैं क्या मतलब होते ही हैं।'' बंटी ने अपनी जानकारी उसको दी। अपना बड़ा-बूढ़ापन लोगों के ध्यान में न आए इसलिए ये कभी 'बाल हो जाएँगे, कभी भइया। बाल हो या भइया इन्होंने पत्थर की पूरी बाबरी मस्जिद खा डाली थी एक बार।''

''हाँ।'' मुस्कराते हुए पिंट्या ने कहा।

''और देख पिंट्या''-बंटिया ने दिलाशा देते हुए उसको नई जानकारी दी।-''इन वयस्कों में अलग-अलग तीन गुट होते हैं।''

''वो कौन-कौन से।''-पिंट्या ने उत्सुकता से पूछा।

''देख इनका वर्गीकरण अपूर्ण है तो भी 'बालयोगी', 'ब्रह्मचारी' और 'पागल'-ये 'बाल-वयस्क' होते हैं। सामाजिक व्यवस्था के नाम से चन्द्र को चाँद कहने वाले, गदर में गर्जना करनेवाले नए 'कुमार वयस्क' होते हैं। इन लोगों को लूटने के लिए सबको मौका देते, अंधा से लेकर मुख्यमंत्री तक चारा, सिमेंट, दुकान वगैरह खानेवाले, ब्लैकमैल करने वाले 'युवक वयस्क'-बड़े-बूढ़े होते हैं।''-बोलते-बोलते बंटिया रुक गया।

समय मिलते ही पिंट्या ने सवाल किया-''और बंटिया यूरिया खानेंवाले बूढ़े किस गुट में आते हैं?''

''छोड़ यार, उसने सिर्फ यूरिया खाया होता तो कुछ न होता। लेकिन वह तो सांसदों तक को खा गया। मगर उनको पचाने नहीं आया।''

पिंट्या ने पूछा-''समझ अगर उसने सांसद डकार लिए होते तो?''

''तो वो अटल के गुट में आनेवाला था।- बंटिया ने जबाव दिया।-''लेकिन पिंट्या अब एक नया ही वयस्क बड़ा-बूढ़ा जन्म ले रहा है। उसके गुट के बारे में मुझे मालूम नहीं। लेकिन आनेवाले समय में पूरा देश निगल लेगा वो।''

'अच्छा! कौन है रे वो?''-''पिंट्या ने खड़ा होकर पूछा-''नाम क्या है उसका?''

''सुनाई देनेवाले का यदि नाम पता लग जाता तो कितना अच्छा होता।''-बंटिया ने जवाब दिया।

✣

34.
गाँधी-ग्राम

मेरे गाँव में 'घोंडा' नामक आदमी रहता था। वह हमारे इलाके का मशहूर पहलवान था। पहलवान होकर भी वह स्वभाव से विनम्र था। उसके पास हमारे गाँव में सबसे ज्यादा जमीन जायदाद थी। मेरे गाँव का वो सुखी आदमी माना जाता था।

दिन ऐसे ही गुजर रहे थे।

मालूम नहीं कैसे और कहाँ से घोंडा को पीने की लत लग गई। वह बहुत पीने लगा। गाँव के लोगों को घोंडा का पीना खटकने लगा। पूरा गाँव एक जगह आया और उन्होंने अपना गाँव 'गाँधी-गाँव' करने का तय किया।

बैठक हुई। बैठक में घोंडा भी आया था। वह पीए हुए था। बैठक ने निवेदन किया। भारत को आजादी दिलाने में गाँधी जी के नशाबन्दी का भी योगदान था। गाँधी जी ने नशाबन्दी आवश्यक मानी थी। उनके गुजरात में नशाबन्दी है। अपने महाराष्ट्र के वर्धा जिले में महात्मा गाँधी जी बहुत सालों तक रहे हैं। उसमें भी नशाबन्दी है। इसलिए गुजरात राज्य को 'गाँधी-राज्य' और वर्धा जिला को 'गाँधी-जिला' कहा जाता है। अत: गाँधी जी की भावना के अनुरूप हमारा गाँव भी 'गाँधी-गाँव' होना चाहिए, ऐसा लगता है। मैं बैठक से निवेदन करता हूँ कि वे निर्णय लें कि आज से कोई भी दारू नहीं बनाएगा। और जो दारू पिएगा या जो बनाएगा अपने आप बोले कि उसे क्या करना चाहिए।

''मैं पीया तो सौ रुपये दूँगा।''– एक ने उठकर कहा।

''मैं पीया तो ढाई सौ रुपये दूँगा''–दूसरे ने उठकर कहा।

आँकड़ा बढ़ता ही रहा। लोग साढ़े सात सौ तक गए। पीकर आया हुआ घोंडा खड़ा हुआ। उसने उठकर कहा–''मैं पीया तो एक बार का एक हजार जुर्माना दूँगा।''

पंचों ने सबके आँकड़े लिख लिए और निर्णय दिया– ''जो पिएगा उसके बोले मुताबिक जुर्माना वसूल किया जाएगा और पीने की सूचना देनेवाले को जुर्माने में से 25 प्रतिशत रकम पुरस्कार दी जाएगी।''

चार दिन तक गाँव 'गाँधी-गाँव' रहा।

पाँचवे दिन घोंडा पीकर तांडे (बंजारा बस्ती) में आया। एक ने खबर दी। पंच जमे। पंच मिलकर घोंडा के घर गए।

घोंडा ने जुर्माने की रकम निकाल कर रखी हुई थी। वो पंचों को दे दिया। वो लेकर पंच घोंडा को न पीने की सलाह देते चले गए। जिसने खबर दी थी उसे ढाई सौ रुपये मिल गए थे।

यही क्रम अगले पाँच दिनों तक चलता रहा।

सातवें दिन घोंडा खुद पंचों के नायक के पास गया। कहने लगा–''मैं दारू पीकर आया हूँ। यह साढ़े सात सौ रुपये ले लो। मैंने ही खबर दी है इसलिए ढाई सौ रुपये काट रहा हूँ।''

✣

35.
सयाना गदहा

मैं पंचों के नायक के घर पर ही था। मुझे शेखचिल्ली की कहानी याद आई।

कहते हैं शेखचिल्ली के पास एक खूबसूरत और उम्दा गदहा था। अच्छे गदहे के सब लक्षण उसमें मौजूद थे। खाना पूरा होते ही वह कचरे में लोट-पोट कर घर आ जाता था। कभी भी गंदा पानी नहीं पीता था। शेखचिल्ली उस पर जान लगाए हुए था। पर गदहे की एक आदत थी। काम पर लगाते ही उल्टा होकर पैर मारता था। शेखचिल्ली की पत्नी को गदहा बिल्कुल पसंद नहीं था। मजबूर होकर शेखचिल्ली ने गदहे को बेचने का फैसला किया।

चूँकि वह गदहा था ही बहुत खुबसूरत इसलिए ग्राहक आने लगे। शेखचिल्ली गदहे के गुणों का बखान करने लगा और जब सौदा तय हो जाता था तो रकम लेते वक्त बोलता–''एक बात है भाई! यह गदहा बहुत खूबसूरत और उम्दा है। इसको खाना बहुत पसन्द है। परन्तु यह काम-धाम नहीं करता।'' ग्राहक यह सुनकर चुपचाप चला जाता था।

यह सब बातें जानवरों के बाजार का दलाल दूर से देख सुन रहा था। वो शेखचिल्ली के पास आया और पूछा–''आपको यह गदहा सचमुच बेचना है न।''

''हाँ सचमुच बेचना है।''– शेखचिल्ली ने कहा।

''ठीक है। मैं बेच दूँगा इस गदहे को। इस गदहे के आखिरी ग्राहक ने कितनी रकम बोली थी।?''

''साढ़े चार हजार मोल तय हुआ था इसका।'' शेखचिल्ली ने कहा।

''ठीक है मैं यह गदहा छः हजार में बेचूँगा और 25 प्रतिशत रकम दलाली करके खुद रख लूँगा। शर्त एक है, तुम्हें दूर खड़ा रहना है और कुछ बोलना नहीं है''

शेखचिल्ली ने हामी भरी।

अब दलाल ग्राहकों को कहने लगा–''यह गदहा खूबसूरत है, उम्दा है, यह खाना कम खाता है और काम चार गदहों का अकेला करता है। जल्दी खरीदो।''

ग्राहक आते गए। अन्ततः एक ग्राहक आया। उसने दलाल के हाथ में छः हजार रखे।

शेखचिल्ली दूर खड़ा यह सब देख-सुन रहा था। वह भागते हुए दलाल के पास आया और कहने लगा-''हट यह गदहा इतना अच्छा है, यह मुझे आज तक मालूम नहीं था। अब मुझे यह बेचना नहीं है।''

शेखचिल्ली ने दलाल को अपनी जेब से डेढ़ हजार रुपये निकाल कर दे दिए और अपना गदहा लेकर वापस आ गया।

☆ ☆ ☆

मुझे आज तक ये समझ में नहीं आया है कि सयाना कौन- घोंड़ा या शेखचिल्ली? आप में से यदि किसी को यह समझ आए तो कृपा करके मुझे सूचित करें।

✤

36.
अजगर और गोह

बाबा आमटे का सोमनाथ प्रकल्प पहले कभी एक बार देखा था। तब बाबा से बहुत सारी बातें हुई थीं। कविता वाचन भी हुआ था। जीवन का एक दिन सार्थक हो गया था। इस सार्थकता से बहुत बड़ा समाधान भी हो गया था। यह बात फिर से याद आई, इसका कारण है। परसो प्रौढ़-साक्षरों के लिए किताब लेखकों का एक शिविर वहाँ आयोजित हुआ था। मैं भी आमंत्रित था। चार दिन में प्रौढ़-साक्षरों के लिए पुस्तक तैयार करना था। प्रौढ़-साक्षरता विभाग से श्री सोनोने उपस्थित थे। उन्होंने मुझे एक कहानी सुनाने के लिए कहा। मैं कहानी सुनाने लगा।

☆ ☆ ☆

एक बार एक गोह और अजगर की दोस्ती हो गई। दोस्ती बढ़ती गई और इतनी बढ़ी कि वे दिन में कम से कम एक बार तो मिल ही लेते थे।

ऐसे ही दिन गुजरते रहे। अब अजगर गोह को बहन कहने लगा और गोह अजगर को भाई कहने लगी।

एक दिन अजगर गोह से बोला, ''गोह बहन-गोह बहन, हमें एक दूसरे से मिलते हुए इतने दिन हो गए, परन्तु हम एक दूसरे के घर कभी नहीं गए। तुम कल मेरे घर आना।''

गोह ने बड़े आनन्द से 'हाँ' कह दिया।

दूसरे दिन गोह अजगर के घर गई। अजगर गोह का इन्तजार ही कर रहा था। उसने गोह को बैठाया। स्वयं उसके सामने बैठ गया और जीभ चाटने लगा। गोह भी बोलते-बोलते जीभ चाट रही थी। जीभ चाटते-चाटते अजगर ने 'जन्मेजय' और अपने पूर्वज तक्षक का इतिहास सुनाया। गोह ने भी तानाजी के विजय में 'यशवन्ती गोह' का प्रकरण सुनाया। वह उसकी करीबी रिश्तेदार थी, यह भी बड़े गर्व से बताया।

दिन डूबने को आया। गोह और अजगर एक दूसरे को देखते हुए जीभ चाट रहे थे। आखिर में अजगर ने

कहा, '' गोह बहन - गोह बहन, अब शाम हो गई। मैं इतने बड़े कुल का हूँ। इसलिए घर में कुछ रखता नहीं। बचा के रखने की मुझे आदत नहीं। अब भूख भी लग रही है। इसलिए मुझे शिकार करने जाना चाहिए।''

गोह ने कहा, ''भइया! मैं भी कोई लबाड़, कोई लालची घर से नहीं आई। मैं भी कोई छोटे कुल की नहीं हूँ। मुझे भी घर में कुछ इकट्ठा कर रखने की आदत नहीं है। इसलिए मैं भी चलती हूँ।''

और दोनों अपने-अपने रास्ते निकल गए।

✤

37.
मुझे याद क्यों नहीं आता

कहानी सुनाकर मैं बैठ गया। कहानी सुनाने के बाद मेरी फजीहत होती है। मगर उसके बारे में क्या कहूँ। सोनोने साहब मेरे दोस्त हैं। वे कहने लगे, ''आत्मारामजी की कहानी है तो अच्छी ही होगी। किन्तु अब हमें कहानियों में पशु-पक्षी, वृक्ष, लता इत्यादि बोलने लगे हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अब आदमी बोलने लगा है।''

मैं नाराज हुआ।

मैं सोचने लगा, ''क्या सच में आदमी बोलने लगा है? लेकिन मुझे याद क्यों नहीं आता। छत्रपति संभाजी के समय में उनके वीरतापूर्वक शहादत तक लोग क्या-क्या बोलते थे? शहीद भगत सिंह के फाँसी पर जाते समय गाँधीजी ने कुछ कहा था। महात्मा गाँधी के शहीद होने के बाद कोर्ट में स्वीकृति बयान देते हुए नाथूराम गोडसे ने कुछ तो कहा था। मुझे याद क्यों नहीं आता? सही में मुझे याद क्यों नहीं आता? और आपातकाल में आचार्य विनोबा भावे ने मौन व्रत धारण करके अनुशासन पर्व पर लिखकर दिया और लिखकर देने से आदमी बोलने-लिखने लगा है, यह बता दिया था, सिद्ध किया था। बाद में चुनाव हुआ था जिसमें चुनकर आए सत्ताधारी पक्ष के पूरे मंत्री राजघाट पर साक्षी के साथ कुछ बोले थे।

मुझे याद क्यों नहीं आता?

✤

38.
पाँच मुट्ठी चावल

यह सब देखते हुए मुझे भगवान बुद्ध की याद आई। उनकी एक कहानी है।

☆ ☆ ☆

एक बार भगवान बुद्ध के पास एक स्त्री आकर रोने लगी। बुद्ध ने उससे रोने का कारण पूछा। वह बोली, '' मेरा इकलौता लड़का मर गया है।'' बुद्ध ने मृत्यु अटल होता है, इसके बारे में समझाया और उसे ढाँढ़स बँधाते हुए चुप होने को कहा। किन्तु वह स्त्री और अधिक रोने लगी। वह बुद्ध से कहने लगी, ''तुम इतने बड़े भगवान हो, क्या इस गरीब विधवा के लड़के को जीवित नहीं कर सकते? तुम्हें उसे जीवित करना चाहिए।''

समझाते-समझाते भगवान बुद्ध थक गए। अन्त में उन्होंने कहा, ''स्त्री! तू जा और जिस घर में आज तक कोई न मरा हो, ऐसे घर से पाँच मुट्ठी चावल ले आ। फिर मैं तुम्हारे लड़के को जीवित कर दूँगा।''

स्त्री घर-घर भटकती रही। लेकिन उसे एक भी घर ऐसा नहीं मिला जिस घर में कोई मौत न हुई हो। उसने अपना हठ छोड़ दिया।

ये बुद्ध और उसका तत्त्वज्ञान भारत का ही है न?

(समाप्त) ❑

कहानी

रामदीन का सपना

■ ब्रह्मदेव शर्मा

'आऽऽहो' 'आऽऽहो'...

'दादाजी क्या है?'

एक नवयुवक ने पास बैठकर उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। उसके कपाट पर पसीने की बूँदे आ गई थीं। उस दरवाजे के पास खड़े लोग भी कुछ विस्मय और कुछ असमंजस से देख रहे थे। यह छोटा-सा दरवाजा दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के हृदयरोग के अभी हाल में बने नये भवन का था। वह बूढ़ा उसी से थोड़ी दूर हट कर छोटे से बरामदे के खंभे के सहारे टिका हुआ बैठा था। उसने धीरे-धीरे आँखें खोली, चारों ओर निहारा, अपने नाती कृष्णकांत की बाँहें अपने हाथों में टटोली... उसके चेहरे पर भी आशंका, अचरज और हल्की सी खुशी का भाव तैर गया और उसकी आँखें फिर बंद हो गई।

यह कहना मुश्किल था कि उसकी चीख खुशी की थी, भय की थी, या कष्ट की थी। भारत के सबसे बड़े अस्पताल में उसे बेसुध हालत में ही लाकर भर्ती कर दिया गया था। वैसे वह बलिया के सुदूर गाँव में रहता है- थोड़ी-सी खेती है। पचहत्तर से ऊपर का हो जाने पर भी खेत में अपने हाथ से काम किये बिना उसे चैन नहीं था। दिल्ली में उसके नाती कृष्णकांत को एक छोटी-सी नौकरी मिल गई थी। दादा सन् पचास के बाद दिल्ली कभी नहीं आये थे। इस बार जिद करके वह अपने साथ उन्हें भी लाया था। अरे, देखो तो चलकर कैसी दिल्ली बनी है, कैसा देश तरक्की कर रहा है, ऐसा भी क्या अब इसी गाँव में आखिरी दम तोड़ेंगे। जल्दी चले आना, चार रोज रहकर ही।

उसने अपने दादाजी को बच्चों की तरह सब कुछ दिखाया। कुछ तो उसने अपनी जवानी में पहले भी देखा था। देखा था वाइसराय और गवर्नर जनरल का महल, देखी थी अंग्रेजी हुकूमत की दुनिया की सबसे आलीशान राजधानी। हर तरह से घूमा था, पैदल और ताँगे पर भी। वाइसराय के लिए एक अलग से ही प्लेटफार्म बना था। उसके पास ही छोटा सा राह के किनारे किसी स्टेशन जैसा ही नई दिल्ली का स्टेशन था। वहीं ताँगे मिल जाते थे। वह सब कहीं खो-सा गया है। अब तो चारों ओर ऊँची-ऊँची बहुमंजिली इमारतें और ठौर-ठौर पर हरे, पीले, लाल, नीले झंडों की कतारों के पीछे बड़े-बड़े होटल, पाँच सितारा होटल, जैसी किसी जमाने में उसने तस्वीरें देखी थी अमरीका की शान शौकत का बयान पढ़ते समय 'लगता है अब तो हमने अमरीका से भी बाजी मार ली है,' उसने उस दिन कृष्णकांत से कहा था।

और वह बूढ़ा खो गया था अपने युवा काल में देखे अमरीका और अब आखिर में अपने देश में बन रहे अमरीका तक की लम्बी यात्रा के सपनों में। गाँधी ने आह्वान किया था लौटने को देश और गाँव को, लड़ने को फिरंगी सरकार से। वह लौट आया था सब कुछ छोड़कर उस एक आवाज पर। परंतु बहुत दिनों तक नहीं चल पाया था वह उनके साथ 'बेबसी की अहिंसा' के रास्ते। उसने अपना ही क्रांति का रास्ता बना लिया था। सब कुछ अंकित था उसके मानसपटल पर। सन् बयालीस में फहराया था झंडा तिरंगा उसने तहसील की इमारत पर। गोलीबारी में कितने ही शहीद हो गये। उसको भी मरा जानकर ही छोड़ दिया गया था। और आज तक दो गोलियों के निशान लिये वह 'जिन्दा शहीद' कहलाता है। सीने पर थोड़ी नीचे लगती तो? आजादी आई और उसने अपनी बंदूक को खेत के कोने में गाड़ दिया था। नया भारत बनाने के लिए आम आदमी की तरह आम जिन्दगी। अंग्रेजी की पढ़ाई, किसलिये? गुलामी के लिये? नहीं, वह अपनी गलती नहीं दुहरायेगा अपने

जीवन काल में। एकमात्र बेटे ने आदर्श विद्यालय में हिन्दी पढ़ी, संस्कृत पढ़ी और पढ़ी अंग्रेजी भी लिखने-पढ़ने भर को। मगर कोई इम्तहान नहीं, कोई प्रमाण पत्र नहीं होता था उस विद्यालय में।

विद्या वह जो, जो पढ़ा लिखा हो उसे भूल जाने के बाद इंसान में बच रहे इंसानियत और हाथ का हुनर ही सबसे ऊँचे हैं। सो चन्दू को बढ़ईगिरी का काम सिखाया। पढ़-लिखकर अच्छे बढ़ई बनो, यही देश की सेवा है। थोड़ी सी नीलामी से बचा हुआ खेत भी था। अच्छी तरह से खाने-पीने को घर में हो। खुद भी भूखा ना रहे साधु न भूखा जाए। और अच्छा इंसान हो। यही आदर्श है, आदर्श समाज की बुनियाद है।

न जाने कितनी बार स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का ताम्रपत्र और मान धन लेने की बात घुमा फिराकर उसके सामने लाई गई थी। उसने बात आते ही ऐसी बात काटी कि किसी को उससे सीधे कहने की कभी हिम्मत नहीं हुई। 'स्वतंत्रता संग्राम का ताम्रपत्र कौन है अधिकारी आज इसे जाँचने तक का? कैसी हिमाकत है? लगता है कुर्सी पर बैठकर सबका ही सिर घूम गया है। जवाहर का भी! ये कुर्सीपोश ताम्रपत्र देंगे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी को! उनको मानधन और पेंशन? अरे, इसके लिये उठाई थी बन्दूक मैंने? अपने मन की आग बुझाई थी समझे, लाज नहीं आती, उसके लिए पेंशन की बात करते?

मगर समय बदला, बदलता गया। उसका आम आदमी की तरह स्वाभिमान और इज्जत की जिन्दगी बसर करने का अहद था। 'आजाद देश का स्वाभिमानी नागरिक', भला इससे भी ऊँची बात, कोई बड़ा ओहदा हो सकता है क्या? सपना तो समता और न्याय का देखा था। सो अब अपने से ही असमानता और अन्याय कर बात शुरू कर दो। आखिर तुम्हारे पास ज्यादा है तो किसी दूसरे का, जिसके पास कम है उसी का, तो हक मारा होगा। नहीं तो वह ज्यादा आया कहाँ से? चंदू उससे पूरी तरह सहमत था परन्तु कृष्णकांत की माँ ने अपने बेटे के बारे में उसकी एक नहीं सुनी। मैं अपने बेटे को साधू नहीं बनाऊँगी। दुनिया जैसी है उसमें जीने लायक तो बने। सो सीमित साधनों से अच्छी पढ़ाई कराई। उसके बाबा रामदीन चाहते तो कोई ऊँची जगह मिल जाती। पर वे कहते रहे 'यहीं खाने-पीने को अच्छी तरह हो जाये, उससे ज्यादा की जरूरत ही क्या?' सो कृष्णकांत को मामूली बाबू की नौकरी दिल्ली में मिल गई। रामदीन को उसके गाँव से चले आने की शिकायत है। वेतन में अच्छा गुजारा चल जाता है इसकी खुशी है। माँ को भी खुशी तो नहीं संतोष जरूर है। चलो, गाँव के अंधे कुएँ से तो निकला, दिल्ली में पैर रखने की जगह तो मिल गई। आज नहीं तो कल अच्छे दिन देखने को जरूर मिलेंगे। और फिर उम्मीद पर ही दुनिया कायम है।

अमरीका जैसी दिल्ली घूमने के बाद रामदीन उस छोटे से कमरे में देर रात तक कृष्णकांत से नई-पुरानी बातें करता रहा। उसे झपकी आ रही थी कि एकाएक बाँई ओर सीने में कुछ भारीपन और थोड़ी देर में दर्द और पसीना। तिपहिये पर उसे अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती करने के लिये ले जाया गया। एक डाक्टर से कृष्णकांत की थोड़ी सी जान पहचान थी। सो उसकी सहायता से उसे आनन-फानन दाखिला मिल गया। वह उसके पहले भी कई बार अपने उधर के लोगों को भर्ती के लिए उनकी मदद लेता रहा था। उसमें भर्ती होना मुश्किल है, मगर भर्ती होने के बाद कहते हैं, सब एक हैं। यहाँ के डॉक्टर देवता हैं, देवता। ठीक भी है। आजादी के बाद पढ़ाई-लिखाई और दवा दारू के मामले में राजा और रंक में कोई भेद न होने की घोषणा हुई थी। सबके लिये समान शिक्षा और समान स्वास्थ्य की सेवाएँ होंगी। राष्ट्रीय स्तर के इस संस्थान के बारे में भी यही घोषणा हुई थी। इसमें भर्ती, व्यक्ति के धन और पद से नहीं जुड़ी होगी। इसमें भर्ती के लिए एक ही पैमाना होगा-व्यक्ति की बीमारी। खूब नाम कमाया इस संस्थान ने। भीड़ बढ़ती गई, सो भर्ती में कुछ तकलीफ भी बढ़ती गई। कोई जान-पहचान का मिल जाये तो उसमें आसानी हो जाती है, बस। मगर इस तरह की संस्थाएँ आम नहीं हो सकीं।

आपातकालीन उपचार कक्ष में जाँच के बाद उसे हृदयरोग के सघन देखरेख वार्ड में भर्ती कर दिया गया। तत्काल जरूरी इलाज भी चालू हो गया। हालत स्थिर हो जाने पर उसे आगे छानबीन और इलाज के लिए सामान्य

वार्ड में भेज दिया गया। यही कोई बारह खाटें थीं। वहीं के कपड़े, एक धारीदार पाजामा और उसी कपड़े की धारीदार अँगरखनुमा बनियान। सबेरे चाय नाश्ता, दोपहर को खाना, साँझ को चाय और रात को खाना। सिर्फ दो मरीज अपने घर से खाना मँगाते थे। सबेरे से रात तक कभी नर्स, कभी डॉक्टर का चक्कर लगता ही रहता था। दो एक बड़े लोग भी वहाँ भर्ती थे मगर कोई भेदभाव नहीं था। उन्होंने बातचीत में उसे बताया कि विशेष वार्ड से यह सामान्य वार्ड ही अच्छा है। विशेष वार्ड में आखिर एक मरीज के लिए इतनी लगातार देखरेख हो ही कैसे सकती है? यहाँ तो चौबीस घंटे कोई न कोई बना ही रहता हैं।

रामदीन को यह सब देख सुनकर बड़ा अच्छा लग रहा था। सच ही कहते थे कि यहाँ पहुँचना मुश्किल है, पहुँचने के बाद तो मरीज स्वर्ग में पहुँच जाता है। उसे अपने कस्बे के अस्पताल की बार-बार याद आ जाती थी। वहाँ फटे-फटाये कपड़े, गंदगी, लापरवाही का आलम था। आदमी बड़ी उम्मीद से जाता है। कहने को सरकारी अस्पताल है। दवा दारू मुफ्त होती है। परन्तु वाह री सरकार! जब देखो तो दवाई नहीं 'बस दो चार दिन में आ जायेगी।' मन बहलाने के लिये अच्छा तकिया-कलाम है। परन्तु सब जानते है कि जब 'कल' ही कभी नहीं आता है तो 'दो चार दिन' की बात तो हर दिन ही सुनने को मिलेगी। दवाइयाँ आने से पहले बाजार में चली जाती हैं। जो अस्पताल में पहुँच भी जाती हैं तो उनके दावेदारों का रेला, अफसर, नेता, यार-दोस्त। हाँ, अस्पताल के रजिस्टर में बहरहाल दवाई का पर्चा मरीज को थमा दिया जाता है। गाँठ में पैसे हैं तो दवा ले आओ, वर्ना डॉक्टर बेचारा क्या कर सकता है?

हाँ, डॉक्टर वहाँ सचमुच ही बेचारे हैं। नर्स, कम्पाउंडर और साफ सफाई वाले, कोई किसी की नहीं सुनता है। अस्पताल आ गये, तनख्वाह पक गई। मरीज का क्या, अगर दवाई के नाम पर पानी भी देते रहो तो दवाई के विश्वास में आधे तो अपने आप ठीक हो ही जायेंगे। जो नहीं ठीक हो पायें वे अपनी तकदीर ठोकें। आखिर डॉक्टर तो डॉक्टर है, कोई भगवान तो नहीं है। और फिर तरह-तरह की जाँच भी तो जरूरी है, विज्ञान का जमाना जो ठहरा। जिसके पास पैसा हो, घर चला आये और इलाज करा ले। लोग भी सोचते हैं जितना गुड़ डालेंगे उतना ही मीठा होगा। जीने मरने का जहाँ सवाल हो, तो पैसे का हिसाब नहीं किया जाता है।

वैसे तो आजकल के डॉक्टरों को भी डिग्री मिलने के पहले शपथ दी जाती है कि डॉक्टरी का हुनर जनसेवा के लिये प्रयोग करेंगे, यह व्यवसाय नहीं है। परन्तु वह शपथ भी आजकल की दूसरी शपथों की तरह ही बन गई है जिसको लेने वाला शपथ लेते समय मानकर चलता है कि शपथ की औपचारिकता निभानी है। आखिर धर्म कर्म में भी क्या होता है? सत्यनारायण की कथा करवा लो, कुछ मंत्र पढ़ लो, सब ठीक हो जाता है ग्रह शान्ति की बात है। वर्ना राष्ट्रपति से लेकर मंत्री, सांसद, अफसर, न्यायाधीश सभी तो शपथ लेकर अपना-अपना पद सँभालते हैं। अगर इन लोगों को अपनी शपथों का थोड़ा-सा भी ख्याल होता तो आज यह हालत क्यों कर होती? अगर वे अपना फर्ज नहीं निभा पाते, तो त्यागपत्र तो दे सकते थे। इतनी ईमानदारी की भी इन लोगों से क्या उम्मीद नहीं की जा सकती है? सो डॉक्टर का ही क्या दोष? अवा का अवा ही खराब है। सच पूछो तो आजकल की हवा ही कुछ खराब है। पहले वैद हकीम शपथ नहीं लेते थे। परन्तु उनके मन में यह भर दिया जाता था कि अगर मरीज से पैसा लिया या दुख-बीमारी की सुन लेने पर भी घर से चल नहीं दिये, तो हाथ का जस चला जायेगा, उनकी दवा बेअसर हो जायेगी। उसके गाँव का रामदयाल जाति से नाई था। परन्तु दस साल उसने हकीम जी के पास बिताये थे। फिर एक घुड़िया पर सवार होकर गाँव-गाँव जाने लगा। खबर मिलते ही चल पड़ता था। मरीज के घर का पानी भी नहीं पीना उसका नियम बन गया था। भगवान ने उसके हाथ को भरपूर जस दिया था। मगर आज के सोच में ये सब दकियानूसी बातें हैं, ढकोसला है। मरीज दवाई से और डॉक्टर के कौशल से अच्छा होता है। उसके अच्छे होने और पैसे के लेने न लेने से क्या संबंध है? पैसा तो आज की बाजार व्यवस्था की आत्मा है। उसके बिना जब कोई भी काम काज नहीं चलता है तो भला दवा दारू को

उससे अलग कैसे रखा जा सकता है?

बहरहाल आज हर जगह डाक्टरी धंधा बन गई है। किस्से तो यहाँ तक सुनने को मिलते हैं कि ऑपरेशन की टेबिल पर पैसा माँगते हैं मरीज की औकात के मुताबिक। कितना सच और कितना झूठ, यह तो भगवान ही जाने। मगर हाँ, पैसा न होने के कारण दवाई के बिना मरीज मर जाय, तो कोई अजूबा नहीं, साधारण सी बात है। इसको देखते हुए रामदीन को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान सचमुच स्वर्ग जैसा लग रहा था। उसके मन में बार-बार यही बात आ रही थी कि आखिर ऐसे अच्छे अस्तपताल और सब जगह भी क्यों नहीं बनाये जाते हैं? रामदीन की एक सप्ताह तक तरह-तरह की जाँचें होती रहीं। इस बीच उसका कई दूसरे मरीजों से भी संपर्क हुआ। जैसे-जैसे उनके बारे में अधिक जानकारी मिलती गई, उसका उत्साह कुछ ठंडा सा पड़ता गया। दूसरी ओर के पलंग पर कमलू अपने बेटे पहलुआ का इलाज कराने आई थी। उमर यही कोई सोलह साल की होगी। कमजोर तो बचपन से ही था, परन्तु दो साल से छाती में तकलीफ कभी-कभी ज्यादा होने लगी। अपने गाँव और कस्बे में दिखाया, फिर पटना। सब जगह घूमी, पर कोई फायदा नहीं। अपने मायके गई तो वहाँ उसका एक गोतिया दिल्ली में इलाज कराकर ठीक होकर गया था, सो उसने सलाह दी यहाँ आने की। डॉक्टर को दिखाया। बताया कि दिल का 'वाल' खराब हो गया, उसे बदलना होगा। डॉक्टर की फीस तो नहीं लगेगी परन्तु ऑपरेशन का सामान घर से जुटाना पड़ेगा। यही कोई तीस हजार रुपये लगेंगे। रुपयों की बात सुनकर उसका मन बैठ गया। अभी गाँठ में तुरंत होने का सवाल ही कहाँ था? किसी तरह ढाई हजार का इन्तजाम करके पहुँची थी दिल्ली। अब लौटने के अलावा कोई चारा नहीं था। 'पैसे हो जायें तब आ जाना' की सलाह देकर उसकी छुट्टी कर दी गई।

छः महीने में उसने सभी सगे-संबंधियों से पैसा इकट्ठा करके और अपनी शादी के दो चार गहने बेच कर तीस हजार और कुछ ऊपर के रुपयों का इन्तजाम कर लिया। दिल्ली आई। बेटे को भर्ती कराने डॉक्टर के पास गई। पुराना केस था सो ज्यादा समय नहीं लगा। मगर डॉक्टर साहब ने बताया कि इस बीच सामान का दाम बढ़ गया है, सो खर्च अब तेंतालीस हजार आयेगा। वह फिर मन मारकर घर लौट गई। फिर छः महीने लग गये उसे, तेंतालीस हजार इकट्ठा करने में। तिबारा फिर वही बात हुई। उसे महँगाई बढ़ने से साठ हजार रुपये के खर्चे की बात कही। यह उसकी चौथी यात्रा थी। इस बार उसके पास पूरे पैसे थे, सो बेटा फिर भर्ती हो गया। ऑपरेशन भी सफल हो गया, वह खुश थी।

मगर रामदीन के मन में न जाने कितने सवाल उठ रहे थे। उसने उससे अनायास पूछ दिया, 'कमलू बेटी, कहाँ से इतना पैसा जुगाड़ा तूने?' एक छोटा सा खेत था सो तीस हजार में बेच दिया था। बाकी पन्द्रह हजार हमारे गाँव के सेठ मनीराम दादा के यहाँ से उधार उठा लिये। भले आदमी हैं बेचारे। लड़के पर दया आ गई, वर्ना हमारे पास तो कुछ था ही नहीं इतना पैसा उठाने को रखने के लिये। गहने पहले ही बेच दिये थे, बाद को रहा सहा खेत भी चला गया। अब टूटी झोपड़ी में दो चार सिलवर के बर्तनों के अलावा बचा ही क्या? काँसे पीतल के होते तो सौ पचास वक्त जरूरत पर मिल जाते। सिलवर का मोल भी क्या?' कमलू ने सहजता से अपनी बात कह दी। 'अब क्या करेगी तू? इस कर्ज का तो ब्याज ही कितना हो जायेगा?' उसके पास कोई जवाब नहीं था। उसकी आँखें छलछला आई, आँचल से पोंछी और बहुत देर तक उसी तरह बैठी रही उस दिन जैसे उजियारे वार्ड के भीतर गहन अँधियारे में डूबी हुई। हाँ, उसका बेटा बच गया है। तड़प-तड़प कर भूखों मरने के लिये। रामदीन बहुत देर तक एक टक देखता रहा। उस बदनसीब-खुशनसीब किशोर पहलू को।

रामदीन ने यहीं पर एक और दुनिया भी देखी। एक पलंग छोड़कर एक और भद्र पुरुष थे। उन्हें वैसे तो यहाँ के इन्तजाम से कई शिकायतें थीं। एक कैदीनुमा धारीदार पाजामा और ऊपर अँगरखा जैसी उसी कपड़े की बंडी। और आठ दिन तक वही कपड़े। नीचे से फटा भी था पाजामा जिसे कोई देखने वाला नहीं था। उनका एक बेटा अमरीका में था, एक यूरोप में। दोनों ने कहा था कि वहीं आकर इलाज करा लो। परन्तु जब देश में ही अच्छे डॉक्टर हैं तो बाहर जाकर पैसा जाया क्यों करो? हालांकि उन्हें सरकार से भी थोड़ी सी जुगाड़ करने पर पूरा खर्च मिल सकता था अमरीका में इलाज कराने का। आखिर किस मुँह से सरकार उन्हें मना कर सकती थी जब सभी

मंत्री-संत्री दिल की जरा सी धड़कन बढ़ी, और पहुँच जाते हैं ह्यूस्टन। 'वे भी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं', उनके पास ताम्रपत्र है। और वह मंत्री, उसे तो राजनीति का पहला पाठ कॉलेज में उसी ने पढ़ाया था, उनसे दो साल जूनियर था। इतना भी नहीं करेगा। जब आई.ए.एस. अफसर अमरीका जा सकते हैं, तो स्वतंत्रता संग्राम सेनानी क्यों नहीं? उन्होंने रामदीन को यह भी बताया कि दिल्ली-बम्बई में बड़े निजी अस्पताल खुल गये हैं। हाँ, वहाँ दाम अधिक लगते हैं, उस अखिल भारतीय संस्थान से भी तीन गुने। पैसे वाले, सरकारी अफसर और नेता भी वहीं जाते हैं। वहाँ जाने पर लगता है कि अमरीका पहुँच गये। साफ-सफाई और देखभाल के क्या कहने।

वह खुद भी वहीं जाने की सोच रहा था। मगर दोस्तों ने बताया कि दिल के मामले में वेनू का जवाब नहीं। सोचा फटा पजामा भी हो तो कोई बात नहीं, ऑपरेशन की टेबल पर तो आदमी विशुद्ध इंसान रह जाता है, बिना किसी तरह के आवरण के डॉक्टर के हाथ में।

रामदीन ने कभी किसी को जाहिर नहीं होने दिया था कि वह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी है। पर जैसे-जैसे वह दूसरे मरीजों की कहानियाँ सुनता जाता था, उसका रुख और भी कड़ा होता जा रहा था। उसने अपनी पहचान आम आदमी से अलग न होने का अहद किया था अपनी बंदूक गाड़ते वक्त। उसके सीने में गोलियों के निशान के बारे में वह इधर-उधर के जवाब दे दिया करता था। वह 'आखिरी वक्त' तक आम आदमी की जिन्दगी जिएगा, बीमार पड़ने पर वह उस अहद को नहीं तोड़ेगा, यह उसका अहद और भी पुख्ता होता जा रहा था।

उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह जो देख-सुन रहा था वह हुआ कैसे? आजादी के बाद सबके लिये समान चिकित्सा व्यवस्था होगी, यह अहद था। इसका जीता जागता उदाहरण यह अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान है। पर इस संस्थान में भी घुन लग गया, ऐसा लगता है। और जब देश के सभी नागरिकों के लिये प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का जाल होना था तो फिर यह निजी अस्पतालों की बाढ़ कैसी? यह स्वास्थ्य बीमा की सरकारी योजना कैसी? इसका तो मतलब यही हुआ जिसके पास जितना पैसा है उसे उतनी अच्छी दवा दारू की सहूलियत मिल सकती हैं । जिसके पास पैसा नहीं है उसे वही बिना दवाई और बिना डॉक्टरों वाली स्वास्थ्य संस्थाओं की दीवारों से सिर फोड़ने के अलावा कोई रास्ता भी क्या बच रहता है? गाँव और गरीब की बात करने वालों को कभी यह समझ में क्यों नहीं आता है कि जिसे कमलू की तरह यह मालूम पड़ जाय कि उसका बेटा, पति या बूढ़े ससुर का भी इलाज हो सकता है तो क्या वह अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर उसका इलाज नहीं करायेगी? ऐसा कौन सा घर है जिसमें दस-पाँच साल में या दस-बीस साल में भी ऐसी बड़ी बीमारी नहीं आती है। उस जमाने की बात और थी जब बीमारियों के बारे में लोगों को कुछ खास मालूम नहीं था। वही झाड़ फूँक और वैद हकीम, नहीं अच्छे होते थे तो समय के सामने हार मानकर बैठ जाते थे। अब आज जब मालूम है कि इलाज हो सकता है तो किसे अपने खेत या गहनों की परवाह होगी? सो रामदीन के सामने आजादी के बाद आज का नक्शा साफ होता जा रहा था। गाँव का बड़ा बेटा कोई भी नहीं बचेगा। धीरे-धीरे इस दुर्व्यवस्था की चपेट से, गरीब का सब कुछ छिन जाएगा कमली की तरह। अगर भगवान की दया और डॉक्टर के कर्तब से वह अच्छा हो गया तो उसे मौत से भी बदतर जिंदगी जीने की मजबूरी होगी।

मगर इन सब बातों पर किसी को सोचने-समझने की जरूरत ही नहीं। देश की बागडोर संभालने वाले नेताओं, अफसरों ने तो अपने लिये व्यवस्था कर ही रखी है, दूसरे लोगों ने भी अपने-अपने संस्थाओं में चिकित्सा का खर्च सरकार के मत्थे मढ़ने के लिये नियम बना लिये हैं। सुना है कि इन नियमों के तहत जरूरी चिकित्सा का खर्च तो क्या सेहत बनाने के हर नुस्खे भी पास हो जाते हैं। आखिर डॉक्टर, नेता, अफसर एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। और तो और कुछ लोगों ने तो उसे अतिरिक्त आमदनी का जरिया तक बना लिया है। उनके एक परिचित एक दिन एक शिक्षक का किस्सा बता रहे थे जिस पर चिकित्सा के फर्जी बिल भुनाने के अपराध में जाँच चल रही थी। उस शिक्षक के एक पुराने वाकिफ जब शिक्षा संचालक होकर आये तो उसने उनके सामने अपना कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया था। भइया, आप जानते ही हैं मेरे आठ बच्चे हैं। आजकल के वक्त में दो बच्चों को ठीक से पालना मुश्किल है। मेरे यहाँ तो छोटे-बड़े सबकी होड़ लगी रहती है उसे यह चाहिये उसे वो चाहिये। सो मैंने एक दिन सोचते-सोचते एक

तरकीब निकाली। आठ बच्चे हैं अगर एक महीने में एक की 'बीमारी' का बिल पास करवा लूँ तो साल में एक का नम्बर आयेगा। साल भर थोड़ी-सी आमदनी होती रहेगी, घर का काम चलेगा। और उसने चलते-चलते यह भी कह दिया 'उसे पैसे से बच्चों के लिये रुखी-सूखी रोटी ही मुहैय्या करवा पाता हूँ। बड़े-बड़े अफसर-नेताओं की तरह टॉनिक और शक्ति-वर्धक दवाईयों का सेवन नहीं करता हूँ। इस पर भी आप मुझे दोषी मानते हैं तो जो भी सजा देंगे वह मुझे कबूल है।'

बहरहाल सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में सबने मन बना लिया है कि उसमें कोई सुधार नहीं हो सकता है। हर ओर रिसन ही रिसन है। जिस घड़े के नीचे छेद हो भला उसे कैसे भरा जा सकता है? और जब नगर और महानगर का यह हाल हो तो गँवई-गाँव की बात कौन करे। हाँ, उस दिन एक युवा डॉक्टर उसके छाती पर घाव का दाग और बात के लहजे को देखकर अपने मन की बात कहने लगा था। वह भी एक जंगली गाँव का रहने वाला था। बचपन में अपनी माँ की अनायास मौत होने पर, गाँव में उसके मर्ज को कोई पहचान तक नहीं पाया था, उसके मन में डॉक्टर बनने की बात आई। पढ़ने में होशियार था; वजीफा मिल गया और आज यहाँ तक आ गया। यहाँ भी पढ़ाई में अच्छा था सो अपने मन का कोर्स मिल गया। हाथ में हुनर है, नाम है, बड़े-बड़े लोगों की भीड़ लगी रहती है ऑपरेशन कराने की। बहुत बार उसके मन में आया वह यहाँ क्यों है? अपने जंगल के गाँव में पहुँचने की हुलास आती है, मगर मन मार कर रह जाता है, क्या करेगा वहाँ जाकर? उसने जो कुछ सीखा-पढ़ा-लिखा उसका कोई उपयोग भी तो नहीं हो सकता है। यहाँ तो हर बात का एक विशेषज्ञ, जिनकी राय के बिना एक कदम आगे नहीं लिया जा सकता है। और सच पूछो तो गाँव खेड़े की किसको चिन्ता है? मेडिकल कालेज में प्रवेश के बाद ही बात सिर्फ एक होती है किस तरह अमरीका जाऊँ, वहाँ पहुँचते ही दो चार साल में लाखों की आमदनी या फिर किसी बड़े शहर में अपना नर्सिंगहोम। आज की चिकित्सा इतनी महँगी हो गई है कि गरीब आदमी या आमआदमी की पहुँच के बाहर है। तो फिर गरीब के दरवाजे पर जाने से मतलब भी क्या है? जहाँ हुनर का बाजार है, वहीं अपनी दुकान लगाओ। सो आज हमारे सभी कॉलेज और संस्थान भी अमरीका और इंग्लैंड के लिए डॉक्टर तैयार करने की फैक्ट्री बन गये हैं। अपने गाँवों के लिए अगर डॉक्टर तैयार करने थे तो उसके लिये कुछ दूसरे किस्म का ही इंतजाम करना होता।

और अब तो विकास के बारे में नया सोच भी तो उसी दिशा में है। जब तक आबादी बढ़ती रहेगी, तब तक विकास का हर प्रयास विफल होता रहेगा। आखिर इतनी तेजी से बढ़ती हुई आबादी के लिये खाने को कहाँ से आयेगा? जिन बच्चों का इलाज करके बचाया जायेगा, बड़े होने के बाद उनके सामने भूखे मरने के अलावा कौन सा रास्ता होगा। इससे यही अधिक अच्छा है कि 'जीव' बचपन में ही 'शांत' हो जाए। ऐसे में दवा दारू की चिन्ता का कोई अर्थ नहीं। दवाइयों की कीमत ऊँची होती जा रही है सो ठीक ही है। जिसकी कुव्वत होगी वह दवाई लेकर बच सकेगा। जिसकी गाँठ में दाम नहीं है, उसे वैसे भी मरना है और ऐसे भी मरना है। इस पर हल्ला-गुल्ला की बात क्या है? प्रकृति का नियम है जो रहने योग्य है वही बचता है, बाकी का जीवन संघर्ष में सफाया हो जाना अनिवार्य है। हम चाहे कितनी भी समाजवाद, न्याय, बराबरी, भाईचारे की बातें करें, पर प्रकृति के उस नियम को तो नहीं टाल सकते हैं।

रामदीन का आम आदमी की तरह जीने का अहद डगमगा रहा था। पचास साल में दुनिया कितनी बदल गई थी। उसका उसे धीरे-धीरे अहसास हो रहा था। शायद आजादी की लड़ाई में उनका सपना ही गलत था। समाजवाद की सोच ही गलत थी। सो प्रकृति के नियमों के मुताबिक देश दो देशों में बँट गया है। अमरीका जैसी दिल्ली जो उसने पचास साल के बाद आकर देखी थी वह उसके गाँव की राजधानी दिल्ली नहीं है। उस दिल्ली में उसका गाँव खारिज है। आम आदमी इस देश पर अनावश्यक बोझ है। जिस बोझ के चलते वे नये भारत के लिये गले में लटके पत्थर जैसे साबित हो रहे हैं। उस पत्थर को उतारकर फेंक देने के अलावा आज असली भारत देश के लिए कोई रास्ता नहीं है जिसका प्रतीक नई दिल्ली है, मुंबई, लखनऊ और भोपाल हैं। रामदीन के मन में रह-रहकर सूल चुभ रहा था। उसको लग रहा था कि वह अपने नाती के कहने पर गलत जगह आ गया था।

सात दिन हो गये थे। रामदीन के परीक्षण पूरे हो गये थे। उसे नहीं मालूम था कि कृष्णकांत उन परीक्षणों के लिए कैसे जुगाड़ कर रहा था। उसने दादा के डर से कुछ बताया भी नहीं। परन्तु साथी मरीजों से मिली जानकारी के मुताबिक दस हजार का खर्च तो आ ही गया होगा। कहाँ से जुगाड़ कर रहा होगा कृष्णकांत? वह खर्च के बारे में सवाल करते ही टाल देता था। आपको क्या करना दादाजी! अरे मुझे तो कुछ नहीं करना, पर आमआदमी क्या करता होगा। और यह टालमटोल बहुत दिनों नहीं चल पाई। परीक्षण सब पूरे हो गये। डॉक्टर ने बताया कि चार जगह खून रुक रहा है, सो चार जगह नस काटकर बदलनी पड़ेगी। अब ऑपरेशन के लिए ज्यादा इंतजार भी नहीं किया जा सकता है। दिल को खून पहुँचाने के चार ही रास्ते हैं, सभी में अवरोध हैं। सो न जाने कब क्या हो जाय? परीक्षण शुरू करने के पहले ही डॉक्टर ने पूछ लिया था कि अगर जरूरत पड़ी तो ऑपरेशन कराने के लिए तैयार हैं? रामदीन को उसमें कोई संशय नहीं था, ऑपरेशन जरूरी होगा तो करा लेंगे।

मगर यहाँ तो 'तैयार होने' का अर्थ ही अलग निकला। डॉक्टर ने ऑपरेशन के खर्चे का तख्मीना दे दिया। सब मिलाकर अस्सी हजार! रामदीन कुछ समझ नहीं पा रह था। एक तरफ डाक्टर कहता है ऑपरेशन जरूरी है, उसकी जान को खतरा है, न जाने कब क्या हो जाये? और दूसरी ओर इलाज के तख्मीने का कागज जिस पर पैसा जमा करा कर फिर से आने की बात लिखी थी। लगता है उसका नाती इंतजाम नहीं कर पाया था। नहीं तो, उस तक बात पहुँचती ही क्यों? उसे ऑपरेशन टेबल पर ले जाया गया होता। परेशान कृष्णकांत ने छुट्टी ली। सब जगह वह घूमा, पर कोई रास्ता नहीं निकला। इस मझधार से निकलने का एक ही रास्ता था किसी अधिकारी/ मंत्री के पास जाकर अपने दादा के पुराने इतिहास को बताकर अनुकम्पा की याचना। ताम्रपत्र की उसे जरूरत ही क्या थी, उसके सीने पर दो तमगे लटक रहे थे। परन्तु वह याचना उसके दादा को कभी मंजूर नहीं होती। सो उतने पैसे नहीं जुटा पाने से दादाजी की छुट्टी करा ली।

वह रामदीन को हृदयरोग के विशाल भवन के सामने बैठाकर स्कूटर लेने चला गया था। रामदीन उस दरवाजे के पास खंभे से टिक कर बैठ गया था। मालूम नहीं कब उसकी आँख लग गई थी बैठे-बैठे। और देखता क्या है कृष्णकांत न जाने और कितने साथियों के साथ भागता चला आ रहा था। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। चारों ओर भगदड़ सी मच गई थी। रुक-रुक कर धमाके हो रहे थे। दूर आसमान धुँए से भर गया था। उसकी ओर दौड़कर आने वाले दल से एक ही आवाज आ रही थी 'हो गया, हो गया, हो गया भई हो गया..' कृष्णकांत ने उसे अपने कंधों पर उठा लिया और नाचने लगा 'दादाजी, आज आपका सपना पूरा हो गया, आपने आजादी के बाद अपनी बंदूक खेत में गाड़ दी थी, मैंने उस बंदूक को आपसे बिना पूछे खोदकर निकाल दिया। लगा दिये हैं डाइनेमाइट व्यवस्था की इन ऊँची दीवारों के तले जिससे वे आगे से कभी आमआदमी का रास्ता नहीं रोक सकें। देखो, बुजदिलों में कैसी भगदड़ मच गई है विस्फोट की एक आवाज सुनते ही, नाली के कीड़े कहीं के।

☆ ☆ ☆

कृष्णकांत उसके सिर पर पसीना पोंछ रहा था 'दादाजी क्या हुआ'! रामदीन चारों ओर देख रहा था, स्कूटर उसे ले जाने के लिए तैयार खड़ा था ... 'अरे तू कृष्णकांत'! उसने उसे गले से लगा लिया और उसका सहारा लेकर तिपहिये पर बैठ गया...।

पीछे छूटता जा रहा था अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नाच रहा था उसके मानस पटल पर ऑपरेशन टेबल पर लेटा मरीज, ऑपरेशन करने के लिए तैयार डॉक्टर और चाकू लगाने के पहले नोट की गड्डी बटोरने के लिए तैयार उसका सहायक।

और कहीं दूर से आ रही थी धड़ाम-धड़ाम की आवाजें... हो गया, हो गया, हो गया। ❑

(डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा (जन्म-1931) लम्बे समय तक भारतीय प्रशासनिक सेवा में रहने के साथ-साथ उत्तर-पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय के कुलपति और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के रूप में सर्वोच्च संविधानिक पद पर रहे हैं। व्यवस्था से समझौता न कर सकने के कारण उन्होंने समय के पूर्व सेवा से त्याग-पत्र दे दिया। वर्तमान में वे 'भारत जन आंदोलन' के अध्यक्ष के रूप में व्यवस्था में बुनियादी बदलाव के लिए संघर्ष में लोगों के साथ जुड़े हैं। आदिवासी इलाकों में स्वशासी व्यवस्था का सूत्रपात इसी संघर्ष का नतीजा है।)

विमुक्त जनजाति के नाटककार और निर्देशक दक्षिण बजरंगे की गिरफ्तारी

विमुक्त जनजाति परिवार में जन्मे छारानगर अहमदाबाद के नाट्य लेखक श्री दक्षिण बजरंगे की विगत 11 मई को गिरफ्तारी हुई। उनकी गिरफ्तारी भारतीय दंड संहिता की धारा 326, 325, 427, 114 के अन्तर्गत हुई है। 'बूधन' को प्राप्त 'ई-मेल' के अनुसार उन्हें 15 दिन जेल में रखा गया और अब उन पर सरदार नगर (छारानगर जिसका हिस्सा है) इलाके में आने पर प्रतिबन्ध है। उनका परिवार भी छारानगर छोड़ तकलीफें झेल रहा है।

दक्षिण बजरंगे विमुक्त जनजाति के युवा और जाने-माने नाट्य लेखक हैं। उनका प्रथम हिन्दी नाटक 'बूधन' नाम से हमारी 'बूधन' पत्रिका के 2001 के अंक में छपा था जो बाद में आई.पी. कॉलेज, श्रीराम सेन्टर सहित दिल्ली व कलकत्ता में मंचित हुआ। अपने मूल गुजराती और हिन्दी भाषा में श्री बजरंगे के ही निर्देशन में इस नाटक का गुजरात, महाराष्ट्र के कई शहरों में सफल मंचन हुआ है।

दक्षिण बजरंगे कई नाटक लिखें व नाटकों का निर्देशन भी किया, जिनमें 'बूधन', 'पीन्या हरि काले की मौत', 'एनकाउन्टर' आदि बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। अभी हाल में गुजरात की घटनाओं को लेकर दक्षिण ने 'मजहब हमें सीखाता आपस में बैर रखना' नामक नाटक लिखा और गुजरात की सड़कों पर कई जगह मंचन किया। दक्षिण के नाटकों में पुलिस अत्याचार की चर्चा प्रमुखता से होती हैं। एक्सप्रेस समाचार एजेन्सी की खबर के अनुसार विगत दिनों श्री बजरंगे के घर के पास ही घटित मार-पीट की घटना में दक्षिण के परिवार के सदस्यों एवं पड़ोसियों के अनुसार उनका नाम शामिल किया गया और इसी के तहत उन पर विभिन्न धाराएँ लगाई गई। दक्षिण की कोई अपराधी पृष्ठभूमि नहीं है। उनका ऐसी घटना में नाम शामिल करना आश्चर्यजनक बात है

उनके भाई पशिचम के अनुसार 1998 से उनके भाई दक्षिण बजरंगे नाटक लिखते रहे हैं और अपने डी.एन.टी. -रैग, छारानगर ग्रुप के साथ उनका मंचन करते रहे हैं। ये सभी नाटक जनजातियों पर पुलिस अत्याचार के विरोध में होते हैं। उन्होंने कहा कि इसीलिए मैं महसूस करता हूँ कि पुलिस ने बिना छानबीन के उनका नाम शरीक कर लिया है। इसी एजेंसी की सूचना के अनुसार दक्षिण के परिवारवालों के अलावा अनेक नाट्य लेखक, रंगकर्मी दक्षिण की (सहायता) बचाव में सामने आए हैं। जनजातीय क्षेत्र में कार्यरत डॉ. जी.एन. देवी, ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता लेखक श्री राम. टी. वासुदेवन नायक, बंगला की प्रख्यात लेखिका व ज्ञानपीठ व मेगासेसे पुरस्कारों से सम्मानित महाश्वेता देवी, प्रसिद्ध चित्रकार भूपेन खक्कर, जाने-माने मलायलम कवि व साहित्य अकादेमी के सचिव के. सच्चिदानन्दन तथा गुजराती लेखक श्री कांजी पटेल ने एक संयुक्त बयान में इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा :

''हमें यह जानकर धक्का लगा है कि एक नौजवान और होनहार नाट्यकार व रंगकर्मी श्री दक्षिण बजरंगे को पुलिस ने गंभीर आरोपों के अंतर्गत गिरफ्तार किया है यद्यपि वे निर्दोष हैं। हम इस बात से अचंभित हैं कि पहले उन्हें पुलिस की हिरासत में रखा गया और फिर उनके नाट्यकार व रंगकर्मी के रूप में प्रसिद्धि को नजरअंदाज कर उन्हें जेल भेज दिया गया। दक्षिण के नाटक हिन्दी और उनके अनुवाद अंग्रेजी में छपे हैं और उन्हें बड़ी संख्या में लोगों ने पसंद भी किया है। दक्षिण ने लगातार पुलिस अत्याचार के बारे में लिखा है और न सिर्फ आम आदमी अपितु वरिष्ठ एव कनिष्ठ पुलिस अफसरों को संवेदनशील बनाने का कार्य किया है। और फिर ऐसा प्रकृतिदत्त प्रतिभा वाले कलाकार को जो कि निर्दोष है के साथ अपराधी जैसा व्यवहार करना अपने आप में जघन्य अपराध है।''

('बूधन'-ब्यूरो) □

मानवता की रक्षा के लिए पुनः दांडी यात्रा

भारत की आजादी के आंदोलन को गति देने तथा पीड़ित मानवता की जागृति के लिए बीसवीं सदी के महामानव गाँधी ने साबरमती से दांडी की ऐतिहासिक यात्रा की थी। जिसके परिणामस्वरूप सत्य, अहिंसा एवं प्रेम के आधार पर ब्रिटिश राजसत्ता को भारत से वापस जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसे ही ध्यान में रखकर इक्कीसवीं सदी में एक बार फिर डॉ. गणेश देवी ने एक दांडी यात्रा का नेतृत्व कर विश्व मानवता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया। 'भाषा आदिवासी अकादेमी', तेजगढ़, जिला-बड़ोदरा, गुजरात से चलकर अपने मुकाम दांडी पहुँची। यात्रा आदिवासी समाज के समक्ष जीवन के प्रश्नों को लेकर हुई, जोकि उच्चतम न्यायालय द्वारा जंगल की जमीन पर आदिवासी अधिकार को समाप्त करने के संदर्भ में वन महासंरक्षक अधिकारी गुजरात सरकार के आदेश से आदिवासी समाज को जीवन मुहैया करने वाली जमीन पर अधिकार से बेदखल होने से उत्पन्न समस्या को आधार लेकर विश्व मानवता के समक्ष चुनौतियों के निराकरण के प्रति जागरण के लिए समझ कैसे पैदा हो के लिए हुई।

यात्रा दिनांक 28-04-2003 की शाम पंचमहाल, तेजगढ़, खांतिमावाट, कवांट के बीस साइकिल यात्रियों द्वारा प्रारम्भ हुई, जिसका नेतृत्व श्री अर्जुन राठवा कर रहे थे। मैं भी अर्जुन राठवा के साथ एक जीप पर नौ बजे रात्रि को तेजगढ़ से चला। जीप रखने का उद्देश्य रास्ते में साइकिल यात्रियों को आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखकर किया गया था। यात्रा का प्रथम पड़ाव 'अक्तेश्वर श्रमिक विकास केन्द्र' था। साइकिल यात्रियों का अग्रिम दस्ता 11.30 रात्रि में पड़ाव पर पहुँचा। लेकिन अन्य साथी रात के अंतिम पहर 4.00 बजे ही पहुँचे। वहाँ के प्रमुख रतन भाई ने साइकिल यात्रियों एवं साथ में चल रहे लोगों के भोजन, आवास की व्यवस्था सम्मान के साथ की।

29-04-03 के मध्याह्न में साइकिल यात्रियों के साथ-साथ श्रमिक विकास केन्द्र, रंगपुर आश्रम से जुड़े अन्य कार्यकर्ता एवं स्थानीय फरियाद निवारण समिति के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने एक सभा का आयोजन किया। इसमें यात्रा के उद्देश्य तथा आदिवासी समाज की समस्याओं पर विचार केन्द्रित करना। भाई अर्जुन राठवा ने रतन भाई से साइकिल यात्रियों को आशीर्वाद एवं शुभकामना देने का आग्रह किया। रतनभाई ने आदिवासी समाज के साथ इतिहास और वर्तमान में हो, रहे छल की चर्चा करते हुए कहा कि एकलव्य को आदिवासी होने के कारण शिक्षा नहीं दी गई और जब वह धनुर्धर हो गया तो गुरु दक्षिणा में उसका अंगूठा ले लिया गया। तभी से आदिवासी समाज बिना अंगूठा के अपनी समस्याओं से जूझ रहा है। लुटेरा वाल्मिकी आदिवासी कहलाता है जबकि ज्ञानी होने पर वह महर्षि हो जाता है यानी ब्राह्मण। 1898-99 में बिरसा मुंडा ने आदिवासी समाज के लघुता की ग्रंथी को समाप्त करने का प्रयास किया। आज दु:ख की बात है कि आजाद भारत में अपने अधिकार के लिए अप्रैल की इस चिलचिलाती धूप में हमारे युवाओं को एक बार फिर दांडी यात्रा करने को मजबूर होना पड़ रहा है। अपनी वेदना व्यक्त करते हुए आदिवासी आरक्षित सीट से चुने जाने वाले अपने समाज के विधायकों, सांसदों एवं रोजगार प्रशिक्षित लोगों को भी कोसा जोकि अपने समाज की दशा को भूल जाते हैं।

सायं 3.15 पर साइकिल यात्रियों का जत्था आगे के लिए रवाना हो गया। राजपिपला से नेश्रंग के बीच पड़ने वाली घाटियों को पार करने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन अपने उत्साह के बल पर सभी यात्री झंकोवा पहुँचे। वहाँ एक होटल में भोजन

करने के पश्चात् रात्रि 1.30 बजे ज्ञानदीप हाई स्कूल ग्राम तालाब पर रुके। यहाँ दो बसों में 77 युवा आदिवासी तेजगढ़ से 3.30 पर पहुँचे। 30-04-03 की सुबह विद्यालय के सभागार में एक सभा हुई जिसमें वहाँ के प्रधानाध्यापक ने सक्रिय भूमिका निभाई। ग्रामीणों की काफी उपस्थिति थी। फूल देकर यात्रियों को सम्मानित किया गया। अर्जुन राठवा ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा कि आज जंगल और फूल दोनों पर संकट है। छात्र-छात्राओं ने स्वागत-गीत गाए। वहाँ के स्थानीय वक्ताओं ने आदिवासी समाज के समक्ष उत्पन्न कठिनाइयों

आज दुनिया दो भागों में बँट गई है। एक जीवन समर्थक ताकत एवं दूसरा मौत की ताकत। अभी जीवन की ताकत पर मौत की ताकत हावी है। इसका ताजा उदाहरण अमेरिका एवं इराक युद्ध है। अन्तरात्मा को जगाने की बात करते हुए उन्होंने कहा कि दो सो रहे लोग एक दूसरे को जगा नहीं सकते। इसके लिए आपको दूसरे के कष्ट के बारे में सोचना होगा आपकी आत्मा स्वमेव जाग उठेगी।

की चर्चा करते हुए कहा कि अगर आदिवासी संस्कृति के आधार पर जीया जाए तो भारत में पाँच अरब आबादी का भी भरण-पोषण आसानी से हो सकता है। आदिवासी समाज में आ रहे बदलाव और बढ़ रही भोगवादी प्रवृत्ति से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं के प्रति चेतावनी देते हुए आगाह किया गया। साथ ही यह भी कहा गया कि आदिवासी जंगल के भक्षक नहीं बल्कि रक्षक है। सभी लोगों ने इस अभिमान को काफी सराहा एवं इसके प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया। प्रिंसिपल महोदय ने स्वागत भाषण दिया। दोपहर में भोजन के पश्चात् यात्रा अगले पड़ाव की ओर बढ़ गई। अगला पड़ाव बारदोली में हुआ जहाँ विक्रम भाई चौधरी ने विद्यालय में रहने एवं खाने की उत्तम व्यवस्था की थी। सायं 7.45 बजे एक सभा का आयोजन हुआ। इस बीच कांजीभाई पटेल के साथ बड़ोदरा से दस व्यक्तियों का जत्था भी पहुँच गया। इस सभा में वक्ताओं ने बताया कि आदिवासी समाज तीर-धनुष से आगे नहीं बढ़ा जबकि अन्य समाज अणु बम तक पहुँच गया जिससे सम्पूर्ण मानव जाति को खतरा पैदा हो गया है। अशोक भाई ने आदिवासी संस्कृति एवं यात्रा के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए इस यात्रा के प्रेरणा स्त्रोत डॉ. जी. एन. देवी के सोच की सराहना की। डॉ. ज्योतिष पटेल, जोकि पेशे से डॉक्टर हैं, ने आदिवासी समाज में होने वाली एक प्रमुख बीमारी सिकल सेल के कारण आदिवासी मृत्यु दर के अधिक होने एवं औसत आयु कम होने का कारण बताते हुए एक फिल्म दिखायी। उन्होंने इससे बचने के लिए विवाह में सतर्कता बरतते हुए सिकल सेल को भी ध्यान में रखकर विवाह करने पर बल दिया। ग्यारह बजे रात्रि में सभा का समापन हुआ। दिनांक 01-05-03 को सुबह 7.30 बजे डॉ. गणेश देवी सपत्नी अन्य दस साथियों के साथ बारदोली पहुँचे। वहाँ स्थानीय विक्रमभाई को आदिवासी पगड़ी पहना कर इस यात्रा का दायित्व सौंपते हुए लड़ाई को आगे बढ़ाने का आह्वान किया। प्रात: 8.15 बजे स्थानीय पड़ाव से आगे-आगे मोटर साइकिल पर विक्रमभाई चौधरी एवं अर्जुन भाई राठवा उसके पीछे साइकिल यात्री एवं उसके पीछे गाड़ियों का काफिला शहर के मार्गों से होते हुए डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा पर माल्यार्पण कर बागामत सहकारी मंडली लिमिटेड के प्रांगण में 9.00 बजे पहुँचा। यहाँ डॉ. गणेश देवी एवं डॉ. ज्योतिष पटेल ने सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रतिमा पर माल्यार्पण किया। तत्पश्चात् यात्रा स्वराज्य आश्रम बेड़छी की ओर बढ़ गयी। यात्रा आश्रम पर प्रात: 10.45 बजे पहुँची जहाँ एक सभा हुई। इस सभा का मंच संचालन कांजी भाई पटेल ने किया। प्रारंभ में अशोक भाई देसाई, अर्जुन भाई राठवा, शंकर भाई राठवा, सना भाई एवं विक्रम भाई ने

लय में रहने एवं खाने
7.45 बजे एक सभा
जीभाई पटेल के साथ
भी पहुँच गया। इस
दिवासी समाज तीर-
न्य समाज अणु बम
नव जाति को खतरा
दिवासी संस्कृति एवं
इस यात्रा के प्रेरणा
की सराहना की। डॉ.
टर हैं, ने आदिवासी
मारी सिकल सेल के
क होने एवं औसत
ते हुए एक फिल्म
एं विवाह में सतर्कता
न में रखकर विवाह
में सभा का समापन
बह 7.30 बजे डॉ.
गों के साथ बारदोली
आदिवासी पगड़ी
पते हुए लड़ाई को
8.15 बजे स्थानीय
ल पर विक्रमभाई
पीछे साइकिल यात्री
शहर के मार्गों से
पर माल्यार्पण कर
के प्रांगण में 9.00
डॉ. ज्योतिष पटेल
मा पर माल्यार्पण
म बेड़छी की ओर
5 बजे पहुँची जहाँ
चालन कांजी भाई
देसाई, अर्जुन भाई
एवं विक्रम भाई ने

आदिवासी समाज की समस्याओं एवं वर्तमान में उनकी दयनीय स्थिति की चर्चा की। डॉ. गणेश देवी ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि आदिवासी भाइयों आप तो उन समस्याओं में जीते हैं। लेकिन मैं उसे खोजते हुए अनुभव करता हूँ। गुस्सा दोनों ओर है। मिलकर आगे बढ़ा जाए तो समाधान आसान हो जाएगा। इसके पश्चात् उन्होंने इस आंदोलन के उद्देश्य को स्पष्ट किया तथा कहा कि हमारी संख्या छोटी है। लेकिन इतने लोग भी समर्पित भाव से एक होकर आगे बढ़ें तो लक्ष्य आसान होगा। अभी हम जमीन के प्रश्न को लेकर आगे बढ़े हैं क्योंकि जमीन से जीवन का प्रश्न जुड़ा है। हमें जीवन को बचाना है। यह हमारा नैतिक दायित्व है। जीवन के प्रश्न में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। हम अभी संख्या के दृष्टिकोण से कम हैं। यह दुःख कि बात है। क्योंकि हमने नारायण भाई देसाई आश्रम प्रमुख को तीन सौ लोगों के साथ आने की बात की थी। मेरे लिए यह दुख की बात है। क्योंकि सत्य के बिना कुछ भी संभव नहीं है। लेकिन मेरे लिए यह एक पाठ भी है। उन्होंने महान गांधीवादी एवं प्रखर चिंतक नारायण भाई देसाई से इस यात्रा एवं अभियान को दिशा देने एवं मार्ग बताने का नम्रतापूर्वक आग्रह किया। नारायण भाई देसाई ने अपने संबोधन की शुरुआत डॉ. देवी के साथ प्रथम मुलाकात की चर्चा से किया जोकि वर्ष 1993 में देसाई एवं देवी के साहित्य सम्मान मिलने से शुरू हुई। उन्होंने डॉ. देवी के नम्रता की सराहना की। उन्होंने बताया कि आज दुनिया दो भागों में बँट गई है। एक जीवन समर्थक ताकत एवं दूसरा मौत की ताकत। अभी जीवन की ताकत पर मौत की ताकत हावी है। इसका ताजा उदाहरण अमेरिका एवं इराक युद्ध है। अन्तरात्मा को जगाने की बात करते हुए उन्होंने कहा कि दो सो रहे लोग एक दूसरे को जगा नहीं सकते। इसके लिए आपको दूसरे के कष्ट के बारे में सोचना होगा आपकी आत्मा स्वमेव जाग उठेगी। आत्मा में किसी प्रकार का दोष नहीं होता। मन, कर्म, वचन में सीधी रेखा बनानी होगी। संस्कृति में आदमी-आदमी का बराबर का संबंध एवं विकृति में आदमी-आदमी का

विरोधाभाषी संबंध होता है। स्वराज्य व
अपने आप पर शासन करना। लक्ष्य व
करना होगा। छोटे-छोटे टुकड़े में स
होती है। अहिंसा, सत्य एवं प्रेम पर अ
रचना करने का प्रयास करें। हम अ
12.45 पर सभा का समापन हुआ। तब
करने का आग्रह किया गया। इस
उपस्थित 'बा' को लिखना-पढ़ना-सिख
सेनानी दशरी बहन से मिला। उन्होंने
अभियान की सफलता की कामना व
बेड़छी आश्रम से दांडी की ओर प्रस्थ
3.35 बजे 'हाइवे' से दांडी की ओर
को दस मिनट तक के लिए शांतिपूर्ण
रूप से जाम किया गया। तत्पश्चात क
बढ़ गया। रास्ते में शाम 4.10 बजे
कृषि अनुसंधान केन्द्र पर हम लोगों
गया।

यात्रा अपने अंतिम पड़ाव दांडी प
स्थल पर डॉ. गणेश देवी की अध्यक्ष
जिसमें सर्वप्रथम यात्रियों ने अपने अनुभ
से बताया। तत्पश्चात् दांडी के इस
धरती पर डॉ. देवी ने आह्वान किया
लिए नहीं, दूसरे के लिए जीएँ, व्यक्ति
दुष्प्रवृत्ति से घृणा करें, गाँधी के सत्य,
पर आधारित समाज की रचना करें। अ
अधिकार के लिए संघर्ष का एक उद
हमें तो इस वैचारिक चिनगारी से ज्वाल
के पीड़ित मानवता का कल्याण करना
के पथ पर जीत सुनिश्चित होती है। अ
के साथ वादा करें कि आप इस पहल
समर्पित होंगे। संकल्प गाँधी के नमक
के स्थल पर लिया गया। इस प्रकार दां
जिसका प्रभाव आने वाले दिनों में परिल
ऐसी मेरी आशा है।

प्रस्तुति :
(रिसर्च स्कॉलर, आदिवासी अकादेमी, तेजगढ़

संस्कृत एवं तिब्बती भाषा का एक सरकारी विद्यापीठ स्थापित हो

*(गत दिनांक 9 अप्रैल, 2003, को 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान', 'राहुल बुहआयामी शोध संस्थान एवं बौद्ध विद्या विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ने संयुक्त रूप से महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जन्म दिवस पर 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन स्मारक व्याख्यान एवं संगोष्ठी' का आयोजन गाँधी शांति प्रतिष्ठान नई दिल्ली में किया। स्मारक व्याख्यान का विषय **'महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं बौद्ध संस्कृति'** था तथा डॉ. तुलसीराम वक्ता थे। संगोष्ठी का विषय 'बौद्ध संस्कृति और आज का समय' था। संगोष्ठी की अध्यक्षता बौद्ध संस्कृति के माने जाने विद्वान डॉ. एन.एच. सम्तानी ने किया। अन्य वक्ताओं में डॉ. संघ सेन सिंह, डॉ. एच. एस. प्रसाद, डॉ. धर्मकीर्ति, डॉ. हीरा पाल गंगनेगी प्रमुख थे। उस पर एक रपट नीचे प्रस्तुत है। –सं.)*

"भारत के बाहर पूर्व सोवियत संघ और वर्तमान रूस व साइबेरिया क्षेत्र में आज भी बौद्ध संस्कृति जीवित है और वहाँ हजारों की संख्या में मूल पांडुलिपि आज भी है।' यह जानकारी डॉ. तुलसीराम ने बौद्ध संस्कृति विषय पर 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन स्मारक व्याख्यान' के दौरान दी। डॉ. तुलसीराम ने बताया कि यह सन् 1929 से 1938 का दौर था जब पूर्व सोवियत संघ के दूर-दराज के इलाके में बौद्ध दर्शन और संस्कृति मार्क्सवाद के समानान्तर फल-फूल रही थी। वहाँ अधिकतर बौद्ध मठ नदियों के किनारे स्थित हैं और उन मठों में बौद्ध धर्म, दर्शन और संस्कृति की जानकारी देने वाली हजारों मूल पांडुलिपियाँ हैं। उन्होंने बताया कि यह सारा ज्ञान और संस्कृति मंगोलिया से साइबेरिया में गयी थी। आज भी तिब्बती भाषा में हजारों मूल पांडुलिपियाँ वहाँ के विभिन्न संग्रहालयों में उपेक्षित पड़ी हैं जिनमें बौद्ध संस्कृति और प्राचीन समय की अद्‌भुत जानकारियाँ छुपी हुई हैं। उन्होंने कहा कि बौद्ध धर्म और संस्कृति जिस देश में गई वह वहाँ फली-फूली और बढ़ी। इसका कारण यह था कि वह जहाँ भी गयी उस देश की सभी चीज को उसने अपने में समाहित कर लिया।

मार्क्सवाद भी बुद्धिज्म को समझने में असफल रहा। आज फिर से नए परिवेश में बौद्ध संस्कृति को समझने का प्रयास पूरी दुनिया में हो रहा है। स्मारक व्याख्यान के अन्त में उन्होंने कहा कि अगर आज महापंडित राहुल सांकृत्यायन होते तो जो काम वे अधूरा छोड़ गए थे, इस नई जानकारी के प्रकाश में वे उसे अवश्य पूरा करते और पूरी दुनिया के समक्ष अद्‌भुत ज्ञान प्रस्तुत करते। राहुल जी मध्य एशिया की बौद्ध संस्कृति के विषय पर लिखना चाहते थे। चूँकि राहुलजी को इन सामग्रियों को देखने पर पाबंदी थी अतः यह कार्य अधूरा ही रहा। बाद में राहुलजी ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर 'मध्य एशिया का इतिहास' लिखा।

आज बौद्ध संस्कृति कठिनाइयों से जूझते हुए पुनः सामने आ रही है।

स्मारक व्याख्यान के बाद 'बौद्ध संस्कृति और आज का समय' विषय पर संगोष्ठी आयोजित हुयी।

बौद्ध विद्या विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष प्रो. संघ सेन सिंह ने कहा कि यदि आज महापंडित राहुल होते तो वे इस समय इराक में इराकियों के साथ होते। राहुलजी की दृष्टि विश्व दृष्टि थी और वे यह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। वे कोई न कोई रास्ता निकालकर वहाँ अवश्य ही पहुँच जाते। उन्होंने कहा कि राहुलजी द्वारा खच्चरों पर लाद कर लाए हजारों मूल ग्रंथ और पांडुलिपियाँ पटना के के.पी. जायसवाल लाइब्रेरी में उपेक्षित पड़ी है। वे बड़ी मेहनत से लाए उन ग्रंथों का उद्धार करने के लिए प्रयत्नशील थे। राहुलजी की सबसे

बड़ी विशेषता थी कि उनके समय की जो समस्याएँ थीं, उनसे वे संघर्ष करते थे। राहुलजी भगवान बुद्ध से इसलिए ही आसक्त थे क्योंकि वे सीधे कारण व कार्य की विचारधारा से जुड़े थे। भगवान बुद्ध संसार में पहले दार्शनिक थे जो कारण और कार्य की बात करते थे। उन्होंने प्राचीन शाश्वतवादी और सनातन दोनों ही मान्यताओं का पुरजोर खण्डन किया। उन्होंने दोनों को खारिज कर मध्यम मार्ग दिया- शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के बीच का रास्ता। बौद्ध संस्कृति ने सभी धर्मों और वर्णों के लोगों को एक माना। स्त्रियों सहित सभी को मुक्ति का रास्ता दिखाया। बुद्ध ने कहा था कि जो विद्या और आचरण का पालन करते हैं वह मनुष्यों और देवों से भी श्रेष्ठ हैं।

इसी विषय पर बोलते हुए डॉ. एच.एस. प्रसाद ने कहा कि बौद्ध दर्शन एक संस्कृति है, एक चिन्तन, एक मान्यता है। पालि के एक शब्द के अनुसार 'धारा के विरुद्ध' चलना है। इसमें सामान्य धर्म के आधार पर मानवता की संरचना, व्यक्ति का निर्माण किया जाता है। बौद्ध दर्शन ऐसी ही परम्परा है जो तमाम संस्कृतियों को समन्वित कर उसे सामान्य धर्म के बन्धन से मुक्त करता है। यह व्यक्ति को एक केन्द्र और प्रारम्भ दोनों ही मानता है और उसको मुक्त करता है। उन्होंने कहा कि बौद्ध संस्कृति के पुनरोद्धार में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का बहुत बड़ा योगदान है। बौद्ध दर्शन एक संस्कृति है जो सत्य के आधार पर परीक्षा करने को कहता है। आज के समय की समस्याओं से निकलने का एक मात्र मार्ग बौद्ध संस्कृति को आत्मसात करना हो सकता है।

डॉ. धर्मकीर्ति ने कहा कि आज के धर्मान्धता का तोड़ सिर्फ बौद्ध संस्कृति ही है। भगवान बुद्ध द्वारा प्रस्तुत बौद्ध धर्म को महापंडित राहुल सांकृत्यायन और बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने ग्रहण किया और उसे आगे बढ़ाया। लेकिन आज एक पागलपन को पूरे समाज का पागलपन बना दिया गया है। उन्होंने कहा कि राहुलजी ने जिस मार्ग को प्रस्तुत किया वह अनिश्वरवाद और अनात्मवाद का मार्ग था। यदि आज भारतवर्ष का कल्याण करना है, जनतन्त्र को मजबूत करना है, समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व और न्याय की स्थापना करनी है तो यह केवल बौद्ध धर्म, दर्शन और संस्कृति से ही संभव है। समाज में यदि इसे लाना है तो यह केवल निश्चित रूप से तथागत के द्वारा जो धर्म दिया गया है, जिस संस्कृति का प्रतिपादन किया गया है, उसका अनुशीलन करना ही होगा।

संगोष्ठी के अन्त में डॉ. हीरापाल गंगनेगी ने संस्कृत और भोटी भाषा संस्थान के निर्माण पर जोर देते हुए कहा कि लद्दाख से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक जो भाषा बोली जाती है, वह है 'भोट भाषा'। उन्होंने सभा के समक्ष एक प्रस्ताव रखते हुए महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित पुस्तक 'किन्नर देश में' के उस अंश की ओर इंगित किया जिसमें राहुलजी ने कहा है- ''क्या मेरा या किसी भी भारत की प्रतिभा से प्रेम करनेवाले भारतीय का कर्तव्य नहीं है कि सरकार को कहें: किन्नर में एक ऐसा सरकारी विद्यापीठ स्थापित किया जाए जहाँ संस्कृत के साथ तिब्बती भाषा में प्राप्य इन ग्रंथों का उच्च अध्ययन हो जिससे समय पाकर लुप्त ग्रंथ फिर हमारी भाषा में आवें और भारतीय विद्वानों में उनका पठन-पाठन होकर उनकी एकांगिता दूर हो। ...ऐसा विद्यापीठ हमारे भोट भाषा-भाषी भू-भाग (किन्नौर, स्पिती, लाहुल, जाँस्कर और लद्दाख) ही नहीं गढ़वाल, अल्मोड़ा के उत्तरी अँचल तथा शिकम् (दार्जिलिङ) के लिए भी योग्य शिक्षक और प्रबन्धक देगा।''

श्री गंगेनगी ने यह भी प्रस्ताव रखा कि भोटी भाषा को देश की 18 भाषाओं के साथ आठवीं अनुसूची में डाला जाए और राष्ट्रीय संस्थान का निर्माण किया जाए। राहुलजी की 'किन्नर देश में' पुस्तक अपने तरह की अनूठी पुस्तक है। यह किताब इस क्षेत्र के रीति-रिवाज, धर्म, संस्कृति आदि सभी को छूती हुई चलती है। राहुलजी का यह बहुत बड़ा योगदान है।

आयोजकों की ओर से यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। प्रतिष्ठान की ओर से डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय ने यह प्रस्ताव रखा कि प्रतिष्ठान बौद्ध विद्या विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय और आवश्यकता पड़ने पर सारनाथ के उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सम्मिलित रूप से पांडुलिपियों तथा अन्य दुर्लभ ग्रंथों का 'डिजिटल

पुस्तकालय' बनाने का प्रयास करेंगे और इसके लिए भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय से आवश्यक मदद के लिए भी परियोजना देंगे। साथ ही डॉ. तुलसीराम द्वारा उपलब्ध कराए सूचना के आधार पर रूस में जो हजारों पांडुलिपियाँ हैं उनके भी उद्धार की योजना बनाएँगे।

सभा के अन्त में अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. एन. एच. सम्तानी ने कहा कि बौद्ध धर्म, दर्शन और संस्कृति को जानने और समझने के लिए राहुलजी की 'बुद्धचर्या' सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। राहुल जी अरुणाचल से लेकर लद्दाख तक यात्रा कर लुप्त ग्रंथों को लेकर सामने आए। आज हिन्दुस्तान को बचाने का एक ही रास्ता है कि सभी ग्रंथों को देखिए, उस पर सोचिए और उसकी परीक्षा कीजिए। सबका समन्वय ही अन्तिम मार्ग है। डॉ. सम्तानी ने राहुलजी द्वारा तिब्बत से लाए ग्रंथों में से दो ग्रन्थों 'अर्थविनिश्चय सूत्र' और 'अर्थ विनिश्चय सूत्र की टीका' (निबन्धन) जो कभी प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय में आठवीं शताब्दी में लिखे गए थे, का सम्पादन किया।

संगोष्ठी में उपस्थित अन्य विद्वानों में उत्तर प्रदेश व बिहार के पूर्व राज्यपाल श्री बी. सत्यनारायण रेड्डी, प्रोफेसर मैनेजर पाण्डेय, प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, डॉ. प्रिय रंजन त्रिवेदी आदि प्रमुख थे।

डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने गोष्ठी संचालन तथा धन्यवाद ज्ञापन किया। ❑

प्रस्तुति : सूरज देव बंसत

डॉ. अम्बेडकर के विचार

आजादी के बाद चार साल तक नेहरू मंत्रिमंडल में कानून मंत्री रहने के बाद डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इस्तीफा दे दिया था। इस्तीफे के बाद बी.बी.सी. टेलीविजन ने उनके साथ महत्वपूर्ण बातचीत की थी और 'द हिन्दू' ने उसकी रपट 26 जून, 1953 के अंक में छापा था।

डॉ. अम्बेडकर भारत में सामाजिक संरचना में परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस तरह के शांतिपूर्ण परिवर्तन में कुछ वक्त लगेगा। किन्तु इसके लिए किसी को कोशिश करनी होगी। यह पूछे जाने पर कि क्या ऐसी कोशिश नहीं की जा रही थी, डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि भाषणों का अन्तहीन सिलसिला जारी था और यह बहुत ही उबाऊ था। सामाजिक संरचना में परिवर्तन के लिए कुछ कार्यक्रम, कुछ कार्यप्रणाली के जरिये त्वरित कार्रवाई की आवश्यकता है।

यदि भारत में लोकतन्त्र कार्य नहीं करता है तो इसका विकल्प क्या है, पूछे जाने पर डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि तब साम्यवाद किसी रूप में आ सकता है।

चुनावों की कौन परवाह करता है? एक सवाल खड़ा करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि लोग भोजन चाहते हैं, लोग अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं। हमारे पास जमीन नहीं है, वर्षा बहुत कम होती है और हमारे जंगल भी नष्ट हो गए हैं। हम क्या कर सकते हैं? मैं नहीं सोचता कि वर्तमान सरकार इस समस्या का समाधान कर सकती है। इस व्यवस्था के जल्द ही ध्वस्त हो जाने की संभावना है। मेरे अपने लोग बहुत अधीर हैं। ❑

('द हिन्दू' 26 जून, 2003 के अंक से)

'बूधन' के सदस्यों से

जिन सदस्यों की वार्षिक सदस्यता राशि पूरी हो चुकी है, वे कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण अविलम्ब करायें। –व्यवस्थापक

प्रथम दक्षिण भारतीय जनजातीय लेखकों का सम्मेलन सम्पन्न

(यह रपट 'बूधन' कार्यालय में देर से प्राप्त हुई। अत: विगत अंक में सम्मिलित नहीं की जा सकी। परन्तु पाठकों के लिए इसकी उपयोगिता को देखते हुए इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।)

विगत 18-19 जनवरी, 2003 को 'आल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम' (अखिल भारतीय जनजातीय साहित्यिक मंच) ने रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली के सहयोग से कन्नड़ विश्वविद्यालय, हम्पी में 'प्रथम दक्षिण भारतीय जनजातीय लेखकों का सम्मेलन आयोजित किया। पहली बार दक्षिण भारत के विभिन्न हिस्सों के लेखक एकत्रित हुए। इस सम्मेलन' में आंध्र प्रदेश, गोवा, कर्नाटक तथा तमिलनाडु की विभिन्न 24 जनजातियों के 175 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में जनजातीय पहचान, परिवर्तन व विकास तथा जनजातीय शिक्षा और उनके समेकन जैसे विषयों पर विस्तार से चर्चा हुई और शोध पत्र पढ़े गए। सम्मेलन का एक सत्र जनजातीय विश्वासों पर केन्द्रित था। इन सभी विषयों पर कुल मिलाकर 50 पर्चे पढ़े गए। सम्मेलन ने कुछ प्रस्ताव भी पारित किए जिसमें मुख्यतया निम्नलिखित थे :-

1. भारत सरकार को विभिन्न प्रदेशों के विश्वविद्यालयों में जनजातियों पर शोध व शिक्षा संबंधी विभागों की स्थापना करनी चाहिए।

2. भारत सरकार को इन राज्यों में एक या एक से अधिक जनजातीय विश्वविद्यालयों की स्थापना करनी चाहिए।

3. भारत सरकार को केंद्र तथा राज्य सरकार की नौकरियों में अनुसूचित जनजातियों का आरक्षण प्रतिशत बढ़ाना चाहिए।

सभा का शुभारम्भ डॉ. रामदयाल मुंडा, भूतपूर्व उप-कुलपति राँची-विश्वविद्यालय तथा अध्यक्ष, ऑल इंडिया ट्राइबल लिटरेरी फोरम (अखिल भारतीय जनजातीय साहित्यिक मंच) नई दिल्ली के कर कमलों से हुआ। अपने उद्घाटन भाषण में डॉ. मुंडा ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि देश की 10 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या मुख्यधारा से अलग-थलग है। राष्ट्रीय विकास में इनके द्वारा दिए गए योगदान को कहीं आँकड़ाबद्ध भी नहीं किया गया है।

मुख्य अतिथि डॉ. एच. सी. बोरा लिंगय्या, डीन, समाजशास्त्र, कन्नड़ विश्वविद्यालय ने यह विचार व्यक्त किया कि जनजातीय समाज आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। उद्घाटन सत्र में ही डॉ. तेजस्वी कट्टीमानी, सिन्डिकेट सदस्य, कन्नड़ विश्वविद्यालय ने कर्नाटक की जनजातियों की वर्तमान दशा पर प्रकाश डाला।

सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया के तहत भोले-भाले जनजातीय लोगों के शोषण पर भी गहरी चिंता व्यक्त की गई।

अपने समापन भाषण में कन्नड़ विश्वविद्यालय के कुलपति ने यह उद्घोषित किया कि जल्द ही विश्वविद्यालय में जनजातीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय की स्थापना की जाएगी।

सभा का संयोजन डॉ. के. एम. मैत्रि, विभागाध्यक्ष, जनजातीय शिक्षण विभाग, कन्नड़ विश्वविद्यालय ने की।

('बूधन'-ब्यूरो) ❑

राष्ट्रीय संकल्प की भूमिका

इराक पर हमले के बाद तेजी से बदल रही दुनिया के परिदृश्य के मद्देनजर आज देश के अन्दर कई संगठन राष्ट्रीय सम्मान और अस्मिता की रक्षा हेतु कृतसंकल्प ही नहीं हैं अपितु सक्रिय भी हैं। इस दिशा में कुछ संगठनों ने मिलकर प्रयास भी किया है। प्रसिद्ध समाजसेवी तथा जन-आंदोलनों से लगातार जुड़े रहे भारत जन-आंदोलन के अध्यक्ष डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा के सम्पादन में 'गाँव गणराज्य' पाक्षिक के जून, 2003, अंक में आज की स्थिति के विश्लेषण का एक दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। 'राष्ट्रीय संकल्प की भूमिका' नामक इस दस्तावेज के अन्तर्गत आजादी के बाद के भारत का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस दस्तावेज के अनुसार हर स्तर पर अन्यायी व्यवस्था की खारिजी का हमारा संकल्प देश के जीवन में समग्र क्रांति का अभियान होगा। उसमें युवा वर्ग के नेतृत्व में आमजन की सच्ची राजनीतिक चेतना का विस्तार परिवर्तन की मुख्य शक्ति होगी। लोकतंत्र, विकास, विज्ञान और आधुनिकता के नाम पर हमारे देश में अब तक जो जाल रचा गया है, उसका पर्दाफाश करके उसको खुलेतौर पर खारिज किया जाए और व्यवस्था के नए प्रतिमान स्थापित हों।

इस नई व्यवस्था के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार होंगे-

1. भारत अभी भी अपने गाँवों में निवास करता है और आगे भी करेगा। नगरों में भारी भीड़ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सकारात्मक बुनियादी बदलाव का परिणाम न होकर, उसकी विकृतियों का परिणाम है। आज खास तौर से गाँव, किसान, मजदूर और आम तौर से असंगठित क्षेत्र के घोर शोषण की बुनियाद पर शहरों में नवधनाढ्य और आसूदा मध्यम वर्ग के पास अटाटूट संपदा और क्रयशक्ति का जमाव हो रहा है। इसलिए नये अवसर भी वहीं पर हैं जिनकी टोह में गाँवों से टूटती खेती-किसानी की भीड़ उमड़ रही है। न्याय और समानता के सही समीकरणों की स्थापना से शहर और गाँव के बीच की खाई पटेगी, शहरों की ओर आनेवाला यह रेला थमेगा और उसके विपरीत गाँव-वापसी की प्रक्रिया भी शुरू होगी। गाँव और किसानी ही राष्ट्रीय जीवन और देश की अर्थव्यवस्था के वास्तविक केंद्र हैं, और आगे भी रहेंगे। राष्ट्रीय विकास उन्हीं की अगुआई में नियोजित हो।

2. समाज के रूप में आमजन की अमोघ शक्ति के भंडार का क्रियाशील होना देश के सच्चे विकास के लिए अनिवार्य है। इसके लिए गाँव की गुलामी का खातमा और गाँव गणराज्य के रूप में समाज की पुनर्प्रतिष्ठा इस दिशा में पहला और निर्णायक कदम होगा। व्यवस्था में यह बुनियादी परिवर्तन किसी की दया भिक्षा पर निर्भर नहीं होगा। लोकतंत्र की सच्ची भावना के अनुरूप इस परिवर्तन की सचेत घोषणा और संकल्प गाँव-गाँव से हो। संसद और विधान सभाओं में जनप्रतिनिधियों का यह दायित्व होगा कि वे इस जन-संकल्प की भावना के अनुरूप उपनिवेशकालीन गुलामी के कानूनों को बदलें। इस बदलाव में दो बातें खास हों-पहली गाँव के स्तर पर आमजन की सामान्य सभा अर्थात् ग्राम सभा की अपनी व्यवस्था स्वयं करने की सक्षमता दर्ज हो, और दूसरी, सभी मामलों में पुलिस सहित पूरे प्रशासन तंत्र की भूमिका स्पष्ट रूप से ग्राम सभा के सहयोगी के रूप में पुनर्परिभाषित हो।

3. जल, जंगल, जमीन सहित सभी प्राकृतिक संसाधन गाँव में निवास करने वाले भारत के आमजन की आजीविका का आधार है। इन संसाधनों पर राज्य की प्रभुसत्ता के आयातित उसूल की समाप्ति की घोषणा हो। उन संसाधनों पर उनसे गुजर करने वाले समाज के नैसर्गिक अधिकार का संकल्प स्थापित हो। इस सहज परन्तु क्रांतिकारी बदलाव की मूल चेतना आजादी की लड़ाई का 'जो जोते उसकी जमीन' का उद्घोष थी। 'धरती माता है' की भारतीय चेतना के अनुरूप धरती सम्पत्ति नहीं है। इसलिए जमीन बाजार में बिक्री की वस्तु नहीं हो सकती है। **संसाधनों के बारे में इस बुनियादी बदलाव के पहले चरण के रूप में गाँव की जमीन पर गाँव के बाहर रहने वाले किसी भी व्यक्ति का किसी भी आधार पर किसी तरह का अधिकार अमान्य हो।** गाँव की अर्थव्यवस्था के शोषण से मुक्ति के साथ-साथ गाँव के किसान, मजदूर, कारीगरों की हकदारी बढ़ेगी। इस बदलते परिवेश में गाँव में नियोजित ढंग से ऐसी व्यवस्था कायम होगी जिसमें खेती सहित

सभी संसाधनों से गुजर करने वालों का उन संसाधनों पर अविनिमेय उपयोग अधिकार मान्य होगा।

4. प्राकृतिक संसाधनं और श्रम ही देश की असली पूँजी है। यही नहीं, श्रम मानवीय जीवन की अनिवार्य शर्त है। श्रम की हकदारी देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के रूप को तय करने के लिए निर्णायक तत्व है। मेहनतकश अवाम गरीब नहीं शोषित हैं। उसे गरीब कहना सबसे बड़ा धोखा और अक्षम्य अपराध है। आज देश में बुनियादी सवाल उत्पादन नहीं, उत्पादन को सही दिशा देना और उसका वितरण है।

5. हमारे देश में शोषण और बढ़ती गैरबराबरी का मुख्य कारण विभिन्न क्षेत्रों में और विभिन्न प्रकार के श्रम की हकदारी के तय करने में भारी भेदभाव और अनकहा अन्याय है। संगठित और असंगठित क्षेत्रों में मेहनत की हकदारी तय करने के लिए बुनियादी उसूल ही भेदभाव पूर्ण है। संगठित क्षेत्र में 'एक कमाये परिवार चले' की मान्यता है जबकि असंगठित क्षेत्र में परिवार में कम से कम दो कमाये तो परिवार चले की मान्यता है। इस भेद को खत्म करके सभी की हकदारी तय करने के लिए समान उसूल हो। खेती-किसानी के काम को उसका जायज कुशल काम का दर्जा हो। ग्रामीण असंगठित और शहरी संगठित क्षेत्र की हकदारियों की आज की भारी गैर बराबरी को एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार कम करते हुए बराबरी का रिश्ता कायम किया जाय। आदर्श स्थिति में हर तरह की मेहनत की हकदारियों में तीन गुने से अधिक अंतर नहीं हो सकता है।

6. भारत के हर नागरिक को आठ घंटे हाथ से काम करके सम्मानपूर्ण जीवन के लिए हकदारी का बुनियादी अधिकार हो। महिला और पुरुष के बीच किसी भी तरह का भेदभाव नहीं हो। देश की समूची अर्थव्यवस्था की संरचना और विकास की योजनाएँ इस केंद्रीय मान्यता की बुनियाद पर बनाई जाय। इसमें पढ़े-लिखे युवा वर्ग को खास तौर से पढ़ाई-लिखाई से जुड़ी अन्यायी हकदारी की व्यवस्था को खारिज करते हुए गाँव के शोषित किसान मजदूर के युवा वर्ग के साथ एकाकार होकर क्रांतिकारी भूमिका निभानी होगी।

7. हमारे देश की स्थिति में पूँजी-मूलक हरित क्रांति के रूप में किसान और देश दोनों के साथ भारी धोखा और भीतरघात हुआ है। मुनाफे के लिए व्यवसाय के रूप में खेती हमारी बुनियादी मान्यताओं के खिलाफ है। पूँजी-मूलक खेती में किसान का खातमा और संसाधनों पर मुट्ठी भर लोगों या कम्पनियों का अधिकार अनिवार्य है। इसके बदले श्रम-मूलक खेती ही देश में न्यायपूर्ण विकास का आधार हो सकती है। इसलिए खेती-किसानी में श्रम को हटाने वाली मशीनों का प्रयोग नहीं हो। अपने परिवार की मेहनत और हल बैल से खेती करने वाला साधारण किसान देश की अर्थव्यवस्था में केंद्रीय होगा और वही उसकी बुनियाद है। कुटीर उद्योगों की पुनर्स्थापना के साथ गाँव की व्यवस्था यथा संभव आत्मनिर्भर हो।

8. आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में आधुनिक तकनीक और जागतिक बाजार के नाम पर भारी पूँजी निवेश और स्वचालित मशीनों का अंधाधुंध प्रयोग जन विरोधी है। लाभ की बजाय जन कल्याण ही उद्योग और उत्पादन का उद्देश्य हो सकता है। विज्ञान सार्वभौम है परन्तु तकनीक की भूमिका देश और काल की स्थिति के अनुरूप जन कल्याण की सहयोगी के रूप में ही स्वीकार हो सकती है। हमारी अपनी मान्यताओं के संदर्भ में हमारी औद्योगिक व्यवस्था स्थानीय तकनीक के क्रमिक उत्थान अथवा उपयुक्त तकनीक पर आधारित हो।

9. खेती-किसानी के बाद बुनियादी उद्योग देश की अर्थव्यवस्था के प्रमुख स्तंभ है। अब तक की गलतियों से सबक लेते हुए सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में राजनीतिक और नौकरशाही की मनमानी और उससे उत्पन्न श्रमिक वर्ग के अनुत्तरदायी व्यवहार के कारण आम लोगों में सार्वजनिक प्रतिष्ठानों और श्रमिक वर्ग के खिलाफ विषाक्त वातावरण बन गया है। नवसाम्राज्यवादी पूँजीवादी ताकतें इस प्रायोजित माहौल का जमकर फायदा उठा रही हैं। अब तक की गलतियों को स्वीकार कर के इस माहौल को बदलना होगा। देश की बुनियादी सेवाओं में भी, जिनमें यातायात, बिजली आपूर्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, सहकारी कर्ज और अन्य संस्थान शामिल हैं, उसी तरह का विषाक्त वातावरण तैयार किया गया है। उनको भी सेठियों और लठैतों को देने की तैयारी का कड़ा निषेध करते हुए अब तक की भूलों का सुधार करना होगा। इसके लिए एक ओर सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों को समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भूमिका निभाते हुए तथा पूरी निष्ठा के साथ अपने दायित्व का

निर्वाह करते हुए प्रबंधन में भी दायित्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। इसके साथ-साथ जहाँ कोई उद्योग स्थानीय संसाधनों पर आधारित है वहाँ स्थानीय समाज को नई व्यवस्था में सम्मानपूर्ण स्थान सुनिश्चित करने का अनुल्लंघनीय शर्त के साथ उसका संचालन किया जाए। तदनुसार इन प्रतिष्ठानों में स्थानीय समाज की मालिकी और मजदूरों की हिस्सेदारी भी सुनिश्चित की जाय। यही उसूल निजी क्षेत्र के बड़े उद्योगों पर लागू होंगे। **इसी तरह दूसरी बुनियादी सेवाओं में भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाय जिससे यह त्रिगुट फिर से गलत रास्ते पर न जा सकें।** इस संदर्भ में हम विनिवेश की वर्तमान नीति को खारिज करते हुए पूरे तंत्र को समाज के प्रति जिम्मेदार करते हुए जनवादी विकास का रास्ता साफ करेंगे। समाज के प्रति जिम्मेदारी की व्यवस्था बड़े निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर भी लागू होगी।

10. खेती-किसानी के लिए आज की संस्थागत कर्ज की व्यवस्था खेती की मूल प्रकृति से असंगत है। यही नहीं, उसमें चक्रवृद्धि ब्याज और मूल से भी अधिक सीमाहीन ब्याज की शर्तें स्वयं राज्य के अपने कानूनों का खुला उल्लंघन हैं, जिनके तहत वे दण्डनीय अपराध हैं। बकाया की वसूली के लिए जमीन की कुर्की और सिविल जेल के प्रावधान लोकतंत्र के लिए कलंक है। खेती के लिए कर्ज की इस व्यवस्था को खारिज करते हुए खेती-किसानी की प्रकृति से संगत ग्राम-सभा की देखरेख में गाँव के किसान, मजदूर, कारीगरों की सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज की व्यवस्था की जाय।

11. आज की शिक्षा जन सामान्य के जीवन से पूरी तरह कटी हुई है। शिक्षा तथाकथित आधुनिक क्षेत्र की छोटी-सी व्यवस्था के लिए मानव-पुर्जे गढ़ने की विशाल मशीन मात्र बन गई है। इसी विसंगति के कारण गाँव और खेती-किसानी के लिए शिक्षा की भूमिका अनिष्टकारी हो गई है। शिक्षा के बारे में वैचारिक अस्पष्टता और निजी स्वार्थ के कारण चौदह वर्ष तक के हर बच्चे के लिए समान और अनिवार्य शिक्षा के नीतिगत दिशा निर्देश की खुली अवहेलना हुई है। गरीब-अमीर के लिए अलग संस्थाओं की व्यवस्था होते जाने से देश का बचपन ही अनगिनत संवादहीन पर्तों में बँट गया है। आज बच्चे के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भावी जीवन में उसके स्थान के लिए निर्णायक है। राष्ट्रीय मूल्यों और उद्देश्यों से असंगत इस पूरी शिक्षा व्यवस्था को खारिज करके राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी पड़ोस के विद्यालय वाली सबके लिए समान और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो। प्राथमिक स्तर की शिक्षण संस्थायें खासतौर से स्थानीय समाज के प्रति उत्तरदायी हों। उसके ऊपर की शिक्षा बच्चों की योग्यता पर निर्भर हो। शिक्षा पर जरूरी खर्च हर स्तर के सार्वजनिक व्यय पर पहला चार्ज हो।

12. सबके लिये स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था राज्य का दायित्व हो।

13. श्रम के लिए न्यायपूर्ण हकदारी के उसूल पर अमल होने के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न व्यवसायों और विभिन्न व्यक्तियों के बीच गैर-बराबरी का बढ़ना रुकेगा और धीरे-धीरे उसमें कमी भी होगी। परन्तु श्रम के अलावा अन्य कारकों पर आधारित हकदारियों, जैसे सम्पत्ति से किराया, पैसे पर ब्याज, तरह-तरह की बिचौलियों के कमीशन या सीधे भ्रष्टाचार के चलते आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण पर अंकुश नहीं लग पाएगा। इसके लिए शहरी संपत्ति पर कड़ी अधिकतम सीमा लगाई जाए। यह भी सुनिश्चित किया जाए कि एक परिवार एक से अधिक आंजीविका के साधनों पर कब्जा नहीं कर पाए। यही नहीं, जब तक केंद्रीकरण से उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में विकृतियों पर सीधा हमला नहीं किया जाता है, तब तक पैसे की ताकत राष्ट्रीय जीवन को जनवादी राह पर वापस लाने के सभी प्रयासों को विफल करने के लिए अवरोध बनी रहेगी।

14. **नवधनाढ्यों की अर्थसत्ता पर कारगर अंकुश लगाने के लिए उपभोगवाद पर सीधा प्रहार अनिवार्य है।** भारत की विपुल आबादी, सीमित संसाधन, पर्यावरणीय सीमाओं के संदर्भ में वीभत्स उपभोगवाद के दो ही परिणाम हो सकते हैं: **पहला** पर्यावरणीय असंतुलन और विनाश और **दूसरा** सामाजिक द्वि-भाजन। उपभोगवाद की अंधी दौड़ को ही विकास मान लेने के प्रायोजित प्रहसन का नतीजा हमारे सामने है। आज भारत दो देशों में बँट चुका है। इसी राह पर आगे चलते रहने से देश के द्विभाजन की यह प्रक्रिया और भी गहराती जाएगी। इस सामाजिक विभीषिका की अंतिम परिणति राष्ट्र-राज्य के विखंडन के अलावा और कुछ हो नहीं सकता है

जिसके पूर्व-संकेत स्पष्ट हैं। इसलिए यह द्वि-भाजन हमें अमान्य है।

15. **भौतिक वस्तुओं का उत्पादन देश की पर्यावरणीय सीमा रेखाओं से संगत सभी नागरिकों की बुनियादी आवश्यकताओं और कुछ सुविधाओं को पूरा करने के लिए होगा। उसमें विलासिता के लिए कोई जगह हो ही नहीं सकती है।** इस व्यवस्था में निजी मोटर गाड़ियों, हर तरह के वातानुकूलन, पाँच सितारा पर्यटन इत्यादि का पूरा निषेध हो। पैसे के बल पर विलासिता में डूबने का किसी को अधिकार नहीं है। इसकी जगह विज्ञान के बढ़ते कदमों का लाभ उठाते हुए हर नागरिक के लिए न्यूनतम भौतिक जरूरतों, अच्छे परिवहन, अच्छी शिक्षा, अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं की सार्वजनिक सुविधाएँ हों। हर नागरिक को जीवन के ललित पक्ष में अपनी संभावनाओं के संपूर्ण विकास के लिए अवसर सुनिश्चित हों। यही हमारे देश के ही नहीं, पूरे मानव जीवन का आदर्श हो सकता है। ❑

'गाँव गणराज्य' पर आधारित एक रपट

- अनिल कुमार पाण्डेय

नर्मदा जल संघर्ष जारी है

15 मई 2003 को 'नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण' (एन.सी.ए.) ने सरदार सरोवर बाँध की ऊँचाई 95 मी. से बढ़ाकर 100 मी. करने का फैसला लिया, जिसकी वजह से नर्मदा घाटी के 13 हजार आदिवासी परिवारों का जीवन खतरे में पड़ गया है। इस फैसले के परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश के निमाड़ क्षेत्र के 100 से अधिक संघन आबादी वाले गाँव तथा महाराष्ट्र के 33 गाँव डूब जाएँगे। आज तक महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश सरकारों द्वारा इन जनजातीय लोगों, जो कि बाँध की ऊँचाई बढ़ाने से विस्थापित होंगे, के पुनर्स्थापन और पुनर्वासन का कोई कार्यक्रम घोषित नहीं किया गया है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में कहा गया था। 'अपडेट कलेक्टिव' के 143वें अंक में इस बात की चर्चा की गई है कि भारतीय जन प्रशासनिक संस्थान (I.I.P.A) ने 14 बड़े बाँधों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला के औसतन एक बड़े बाँध से लगभग 44,182 व्यक्ति विस्थापित हो जाते हैं। इस आँकड़े को 3600 बड़े बाँधों से गुणा करने पर यह संख्या 15 करोड़ 90 लाख से अधिक हो जाती है।

श्री एन. सी. सक्सेना, पूर्व सचिव, योजना आयोग, भारत सरकार ने अपने एक निजी भाषण में बताया कि यह संख्या 5 करोड़ है। (जिसमें से 4 करोड़ बाँधों की वजह से विस्थापित है। यह संख्या पूरे गुजरात की जनसंख्या से ज्यादा है।

तथ्यों को इस तरह भी समझा जा सकता है कि 1973 में सरदार सरोवर में संभावित विस्थापित परिवारों की संख्या 6 हजार बताई गई थी। 1987 में यह बढ़कर 12 हजार हो गई और 1991 में 27 हजार। 1992 में सरकार ने यह घोषित किया कि लगभाग 40 हजार परिवार प्रभावित होंगे। नर्मदा बचाओ आन्दोलन के अनुसार लगभग 85 हज़ार परिवार प्रभावित होंगे।

केन्द्रीय जल आयोग के अनुसार भारत में 3600 बड़े बाँध है जिसमें 3300 आजादी के बाद बने तथा 1000 और बनाने की योजना है।

पर त्रासदी यह है कि इतने बाँधों के पश्चात् भी लगभग 20 करोड़ लोगों को पीने के लिए सुरक्षित जल भी उपलब्ध नहीं है, जबकि कहा जाता है कि इन बाँध ों से पैदा होने वाली बिजली और पानी लोगों को मिलेगा। भारत ने अब तक इन 3 हजार 3 सौ बाँधों पर 1996-97 की कीमत पर लगभग 2 लाख 20 हजार करोड़ रुपया खर्च किया है। परन्तु हिन्दुस्तान के तमाम गाँव और जनजातीय क्षेत्रों के लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्रों में बिजली उपलब्ध नहीं है। यह सारी बिजली और पानी किसके लिए है? आज हम सबके लिए यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या बड़े बाँधों का कोई विकल्प नहीं है।

जहाँ तक सरदार सरोवर की बात है 'अपडेट' के अनुसार भोपाल में नर्मदा बचाओ आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं ने घेराव किया, 200 कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी हुई। नासिक में इस परियोजना से प्रभावित लोगों ने धरना दिया और इस आन्दोलन की नेता सुश्री मेधा पाटकर भूख हडताल पर बैठीं। इस इलाके के आदिवासियों का साहस और संघर्ष-शक्ति अद्‌भुत है, जो पिछले दो दशकों से लगातार संघर्ष कर रहे हैं। यह संघर्ष आज भी जारी है।

('बूधन'-ब्यूरो) ❑

राष्ट्रीय आदिवासी भाषा सम्मेलन

गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा व सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली संयुक्त रूप से दिनाँक 5 से 7 सितम्बर, 2003 को राष्ट्रीय आदिवासी भाषा सम्मेलन का आयोजन करने जा रहा है। तीन दिनों तक चलनेवाले इस सम्मेलन का विषय 'आदिवासी भाषाई समूहों की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन में भूमिका' होगा तथा इसके अन्तर्गत जनजातीय भाषाओं, वैश्वीकरण तथा अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक कारणों से उत्पन्न खतरों से रक्षा जैसे मुद्दों को उठाया जाएगा।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाओं में जनजातीय भाषाओं का शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा होगी। इसके अतिरिक्त भाषायी तौर पर अल्पमत लोगों को संविधान की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत मिले हुए लाभों को उन तक पहुँचाने जैसे विषय पर चर्चा होगी।

इस सम्मेलन के दौरान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा जनजातीय क्षेत्रों की जीवन शैली, सांस्कृतिक पहचान तथा उनके सशक्तिकरण के आवश्यकताओं के अनुरूप एक केन्द्रीय तकनीकी संस्थान की स्थापना पर भी विचार किया जाएगा। इस सम्मेलन में नीति निर्धारकों, सांसदों सहित अनेक विद्वानों के भाग लेने की संभावना व्यक्त की गई है।

इसके अलावा जनजातीय समुदायों में शत-प्रतिशत शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा जनजातीय भाषा और उनके पारम्परिक ज्ञान पद्धति का दस्तावेजीकरण हेतु उठाए जानेवाले कदम पर भी चर्चा होगी। ☐

('बूधन'-ब्यूरो)

पाठकों से निवेदन

'बूधन' विमुक्त, घुमन्तू तथा अन्य जनजातियों के जीवन पर केन्द्रित पत्रिका है। बूधन के माध्यम से उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का गंभीर प्रयास है। दलित, स्त्रियों तथा अन्य हाशिए के लोगों के समान ही आज का जनजातीय समाज हाशिए पर है। यह हम सबका सरोकार है। कृपया अपने जैसे गंभीर पाठकों से बूधन की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें और अपने शहर के पत्र-पत्रिकाएँ विक्रेताओं से कहें कि वे 'बूधन' मँगवाएँ।

सम्पर्क के लिए लिखें :- **बूधन**
बी-3, सी.ई.एल. अपार्टमेन्टस
बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली-110096 फोन : 22618064

सहयात्री पत्रिकाएँ

1. **पहल** :- ज्ञानरंजन, 101, राम नगर, आधारताल, जबलपुर (म०प्र०)-482004
2. **कथन** :- रमेश उपाध्याय, 107, साक्षरा अपार्टमेंट, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
3. **समकालीन सृजन** :- श्री शंभुनाथ, 20, बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकता-700007
4. **संधान** :- सुभाष गाताड़े, बी 2/51, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110085
5. **सृजन मूल्यांकन** :- स्वामी शरण, ए-3/154 एच, मयूर विहार फेज-3, दिल्ली-110096
6. **सम्बोधन** :- कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, कांकरोली, राजसमन्द-313324 (राजस्थान)
7. **शेष** :- हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहारपुरा, जोधपुर-342002
8. **साम्य** :- विजय गुप्त, ब्रह्मरोड, अम्बिकापुर-497001 (म०प्र०)
9. **नई पौध** :- रामकुमार कृषक, सी-3/59, सातदपुर विस्तार, करावल नगर, दिल्ली-110094
10. **समयान्तर** :- पंकज बिष्ट, 79-ए, दिलशाद गार्डेन-दिल्ली 110095
11. **वर्तमान साहित्य** :- विभूति नारायण राय, प्रथम तल, 1-2 मुकुन्द नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)
12. **युद्धरत आम आदमी** :- रमणिका गुप्ता, प्रणेश कुमार, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग
13. **युवा संवाद** :- ए.के. अरुण, 167-ए/जी.एच-2, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
14. **इतिहास बोध** :- लाल बहादुर वर्मा, 1496 किदवई नगर, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006
15. **दायित्व बोध** :- विश्वनाथ मिश्र, ने.पी.जी. कॉलेज, बड़हलगंज, गोरखपुर (उ०प्र०)
16. **छात्र संग्राम** :- निशान्त, पो. बा. 5, फे. ऑ.-भेटिया पड़ाव, हल्द्वानी, उ.प्र.
17. **सापेक्ष**:- महावीर अग्रवाल, एच-24/8, सिविल लाइन, कसारीडीह, दुर्ग-491001
18. **संदर्श** :- सुधीर विद्यार्थी, शंकर नगर, बीसलपुर, पीलीभीत-262201
19. **गाँव-गणराज्य** :- ब्रह्मदेव शर्मा, ए-11, नंगलीरजापुर, निजामुद्दीन (पू) नई दिल्ली-110013
20. **हंस** :- राजेन्द्र यादव, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
21. **दस्तावेज** :- विश्वनाथ प्र० तिवारी, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)
22. **सामयिक वार्ता** :-राजेन्द्र राजन, सी-28, गली न. 8ए, पश्चिम विनोद नगर, दिल्ली-110092
23. **सर्वनाम** :- विष्णुचंद्र शर्मा, ई-2 सादतपुर, दिल्ली-110094
24. **अरावली उद्घोष** :-हरिराम मीणा, 31, शिव शक्ति नगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019
25. **शैक्षिक सन्दर्भ** :- राजेश खिंदरी, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद-461001
26. **कथादेश** : - हरिनारायण, सी-52/ जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095
27. **उद्भावना** : अजेय कुमार, ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095
28. **नटरंग** : नेमिचंद्र जैन, बी-31, स्वास्थ्य विहार, विकास मार्ग, दिल्ली-110092
29. **मड़ई** : डॉ. कालीचरण यादव, बनियापारा, जूना बिलासपुर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़-495001
30. **ढोल** : अरुणा जोशी, भाषा संशोधन-प्रकाशन केंद्र, 6, यूनाइटेड एवन्यू, वड़ोदरा-390007
31. **भारतीय वांङमय** :- विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, पो. बॉ. नं.-1149, वाराणसी-221001

बूधन यहाँ से भी प्राप्त करें

(1) **डॉ. आनन्द किशोर C/o गाँधी प्रेस,**
श्री लक्ष्मी किशोरी महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार - 843302
टेलीफोन -(6226)- 255200

(2) **डॉ. रीपु सूदन प्रसाद श्रीवास्तव**
भूतपूर्व अध्यक्ष, दर्शन विभाग,
बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
टेलीफोन -0621-2243839

(3) **डॉ. ललन सिंह** – इलेक्ट्रॉनिक विभाग,
अनुग्रह नारायण कॉलेज, पटना

(4) **डॉ. अमरेन्द्र नारायण**- भौतिकी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

(5) **डॉ. कृष्ण कुमार सूद**- विभागाध्यक्ष,
भौतिकी विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

(6) **श्री गिरजेश तिवारी**
राहुल सांकृत्यायन जन हाई स्कूल, लछिमपुर,
पोस्ट-हीरा पट्टी, आजमगढ़- यू. पी.

(7) **डॉ. रेखा गोविल**
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान
टेलीफोन-01438-228367

(8) **डॉ. के. एम. श्रीवास्तव**
सी 20/1-32, रमाकान्त नगर कालोनी
(पिशाच मोचन के पास)
वाराणसी-221010 यू.पी.
टेलीफोन-0542-2391076

(9) **डॉ. अजीत कुमार**
पैथलैब, बेता रोड (अस्पताल रोड)
लहरिया सराय, दरभंगा, बिहार

(10) **डॉ. अवनीश कुमार**
गणित एवं कम्प्यूटर विभाग,
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी,
टेलीफोन -0517-2320798

(11) **डॉ. जोगा सिंह**–विभागाध्यक्ष,
पंजाबी एवं मानवशास्त्र विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

(12) **श्री रामेश्वरम्**
क्रांति कुटीर, शिवाजी मैदान,
डाल्टनगंज, पलामू, झारखण्ड-822101

(13) **डॉ. लाल बहादुर वर्मा**
बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर,
मेहदौरी कालोनी, तेलियरगंज,
इलाहाबाद - 211004
टेलीफोन 0532-2546769

(14) **श्री हेमन्त कुमार दास**
रचनात्मक विकास सेवा संस्थान,
आबादगंज, डाल्टनगंज, पलामू, झारखण्ड
टेलीफोन 06562-227207

(15) **श्री शंभु रतन अवस्थी**
अपर महाप्रबन्धक
इंदिरा सागर साइट कार्यालय, बी.एच.ई.एल.
नर्मदा नगर, खण्डवा-450119
फोन : 07323-284212

(16) **श्री सुधीर आर. देवरे**
टेलीफोन कालोनी (बस स्टैण्ड के पीछे)
सटाणा, जिला-नासिक, महाराष्ट्र-423301
फोन : 02555-21357

(17) **श्री रतन कात्यायनी** –मुक्तिआश्रम,
विराटनगर, जयपुर, राजस्थान-303102

(18) **मछिन्द्र भोषले**
1/1, श्रीनाथ नगर, सूर्यनगर (पुलिस थाने के पीछे), शास्त्री मार्ग, विक्रोली-(प)
मुम्बई-400083 फोन : 022-25783101

(19) **डॉ. सुधा पटवर्धन**
1198, शिवाजीनगर, 'आशीर्वाद'
फर्ग्युशन कॉलेज समोर, पुणे
फोन : 020-5539270

(20) **डॉ. स्वामी प्रसाद**–प्रवक्ता-समाजशास्त्र
मैथिलीशरण गुप्त मार्ग, भरूआ सुमेरपुर,
जिला-हमीरपुर, उ.प्र.-210502

(21) **संजय परवीन भाई घमंडे**
छोटालाल लेन, ए-वार्ड, कुबेरनगर,
(एम.जे. मार्किट के पीछे), कुबेरनगर,
अहमदाबाद-गुजरात-